ऋषभ-चरित्र

वर्षीतप विधि महात्म्य

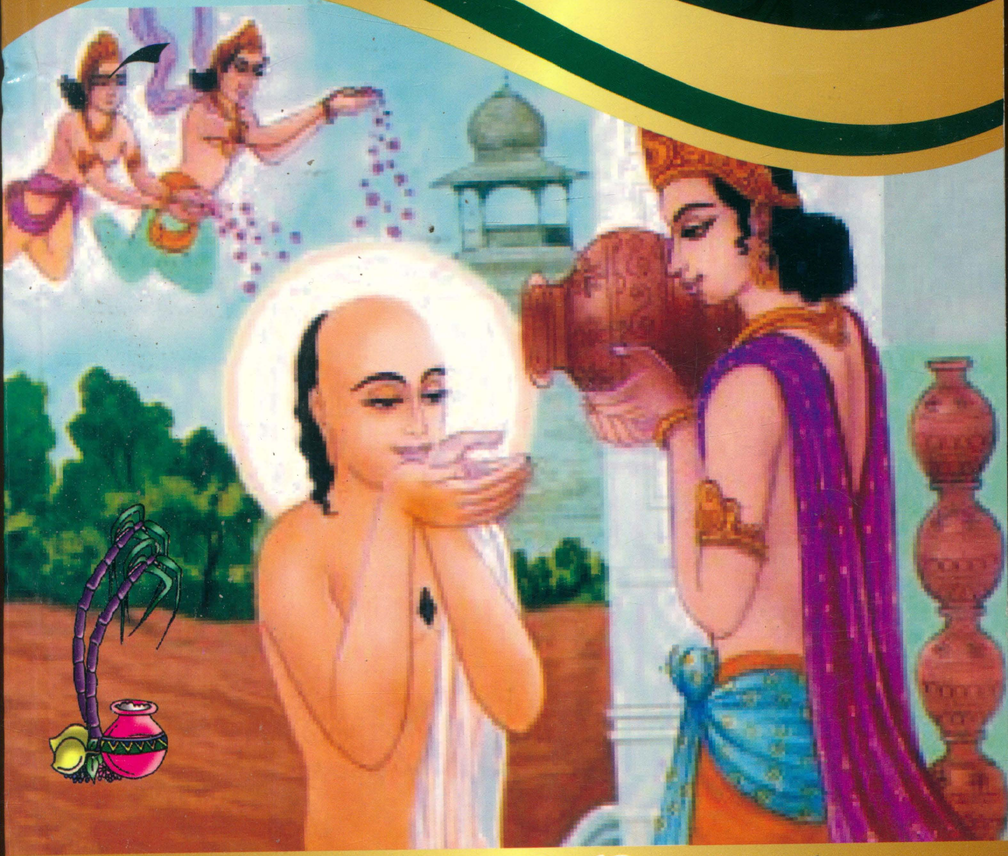

साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा'

##卐 ॐ श्री आदिनाथाय नमो नमः 卐

उपवास, आयंबिल, एकासना का वर्षीतप करके प्रभु आदिनाथ की तप-परंपरा से जुड़कर अनंत कर्म निर्जरा के लाभार्थी बनें।

कहा है— लालीबाई करे लप।
करने दे नहीं तप।।

यदि तपस्या से वर्षीतप नहीं कर सके तो निम्न वर्षीतप करके कर्म निर्जरा करें।

१. वर्धमान सामायिक वर्षीतप
२. वर्धमान महामंत्र वर्षीतप
३. वर्धमान लोगस्स वर्षीतप

★ सामायिक से सर्व सावद्ययोग की विरती होती है,

★ नवकार मंत्र की माला से पंच परमेष्ठी में स्थान मिलता है।

★ लोगस्स सूत्र की माला से सम्यग्दर्शन विशुद्ध होता है।

जीवन का Fuse उड़े उससे पहले शरीर का Use करके शरीर को तपालो।

खाने से खिलाना जिसे अच्छा लगता है उसी का मानव-जीवन सफल होता है।

नमो अरिहंताणं।
नमो सिध्दाणं।
नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं।
नमो लोए सव्वसाहूणं।

ऋषभ-चरित्र

वर्षीतप विधि महात्म्य

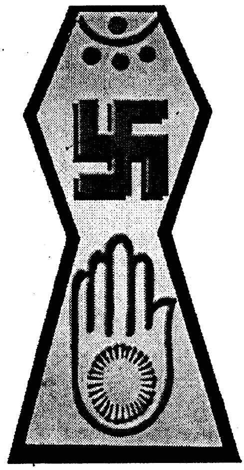

"परस्पर सहयोग ही जीवन है"

साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा'

"णमो सुयदेवयाए"

卐 श्री आदिनाथाय नमः 卐

पुस्तक ✧ ऋषभ–चरित्र

लेखिका ✧ **साध्वी प्रियदर्शनाश्री 'प्रियदा'**

जैन सिद्धान्ताचार्य, एम.ए.

गुरूकृपा वृष्टि ✧ **परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म.सा.**
ध्यानयोगी एकान्तर तपधारी आचार्य डॉ. शिवमुनि जी म.सा. उपप्रवर्तिनी महासती केसरदेवी जी म. सा.
अध्यात्मयोगिनी महासती कौशल्या देवी जी म. सा.
शासन–प्रभाविका महासती विजयश्री जी म.सा.

संप्रेक्षक ✧ श्री अचलेश जी वीरचंद जी कात्रेला,
रायपुर (छ.ग.)

द्वितीया वृत्ति ✧ मार्च सन् 2014

प्रति ✧ 2000

मूल्य ✧ वर्षीतप आराधना अथवा पठन–पाठन

पुस्तक प्राप्ति स्थल ✧ समन्वय चॅरैटेबल ट्रस्ट,
श्री सुजीत जी खटोड
सुमीत जैन सेविंग्स, गुरुद्वारे के बाजू में
भिलाई–3, मो. 9826148939

मुद्रक : महावीर प्रकाशन (प्रिंटिंग यूनिट), रायपुर(छ.ग.)

卐 श्री ऋषभदेव स्तोत्र 卐

(श्री यशोविजयसूरि रचित)

आदिजिनं वंदे गुणसदनं, सदनन्तामलं–बोधं रे।
बोधकता गुण विस्तृत कीर्तिं कीर्तित पथम विरोधं रे।।१।।

रोधरहित विस्फुरदुपयोगं, योगं दधतमभंगं रे।
भंगं नयव्रज पेशलवाचं, वाचंयम सुख संगं रे।।२।।

संगत पद शुचिवचन तरंगं रंगं जगति ददानं रे।
दान सुरद्रुम मंजुलहृदयं–हृदयंगम–गुण–भानं रे।।३।।

भानन्दित–सुर–नर–पुन्नागं, नागर–मानस–हंसं रे।
हंसगतिं पंचमं गतिवासं, वासव विहिताशंसं रे।।४।।

शंसन्तं नयवचनमनवमं नवमंगलदातारं रे।
तारस्वरमघघनपवमानं, मान, सुभट जेतारं रे।।५।।

'इत्थं स्तुतः प्रथमतीर्थपतिः प्रमोदात्,
श्रीमद्– यशोविजय– वाचक पुंगवेन।
श्री पुण्डरीक–गिरिराज विराजमानो,
मानोन्मुखानि वितनोतु सतां सुखानि।।' ।।६।।

भगवान आदिनाथ : एक परिचय

1. तीर्थंकर ✧ वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम

तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु

2. कुल–भव ✧ कुल तेरह भव

1. धन्नासार्थवाह–इस भव में समकित की प्राप्ति हुई

2. युगलिया

3. देव (सौधर्म देवलोक में)

4. महाबल

5. ललितांगदेव

6. वज्रजंघ

७. युगलिया

8. देव (सौधर्म देवलोक में)

9. जीवानन्द वैद्य

10. देव (अच्युत देवलोक में)

11. वज्रनाभ चक्रवर्ती

12. देव (सर्वार्थ सिद्ध विमान में)

13. प्रथम तीर्थङ्कर

3. समकित की प्राप्ति कैसे हुई	✧	आचार्य धर्मघोष मुनि को भावपूर्वक निर्दोष घी का दान देने से।
4. तीर्थंकर गौत्र का उपार्जन	✧	ग्यारहवें वज्रनाभ चक्रवर्ती के भव में।
5. च्यवन	✧	33 सागरोपम की आयु पूर्ण करके सर्वार्थ सिद्ध विमान से
6. गर्भ कल्याणक	✧	आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में चन्द्र का योग होने पर 33 सागर का आयुष्य पूर्ण करके।
7. माता का नाम	✧	मरुदेवी।
8. पिता का नाम	✧	नाभि कुलकर।
9. देश	✧	कौशल देश वनिता नगरी
10. स्वप्न	✧	माता ने 14 शुभ स्वप्न देखे।
11. जन्म कल्याणक	✧	चैत्र कृष्णा अष्टमी–अर्धरात्री।
12. जन्म का समय	✧	वर्तमान अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के चौरासी लाख पूर्व और नवासी पक्ष अर्थात् तीन वर्ष आठ माह पन्द्रह दिन शेष रहे, तब
13. देहमान	✧	500 धनुष।

14. लक्षण	✧	जंघा पर वृषभ का लक्षण।
15. नामकरण	✧	वृषभ का स्वप्न देखने से ऋषभ नाम रखा। साथ में जन्मी बालिका का नाम सुमंगला।
16. वंश गौत्र	✧	इक्ष्वाकु वंश काश्यप गौत्र।
17. शरीर का वर्ण	✧	स्वर्ण समान
18. जन्माभिषेक	✧	चौसठ इन्द्रों व छप्पन दिशा कुमारियों द्वारा मेरू पर्वत पर।
19. संहनन	✧	वज्र ऋषभ नाराच।
20. संस्थान	✧	समचतुरस्त्र।
21. पत्नी	✧	सुमंगला, सुनन्दा।
22. संतान	✧	सुमंगला से भरत, ब्राह्मी सुनन्दा से बाहुबली व सुन्दरी। अनुक्रम से ४९ युगल पुत्रों को जन्म दिया।
23. नीतियाँ	✧	हकार, मकार, धिक्कार।
24. प्रथम राजा	✧	ऋषभ।
25. जन्म–स्थान	✧	वनिता नगरी, अपर नाम अयोध्या।
26. वनिता–नगरी	✧	लम्बाई 12 योजन व चौड़ाई 9 योजन।

27. कंवर पद	20 लाख पूर्व।
28. राज्यकाल	63 लाख पूर्व
29. प्रथम	प्रथम शिल्पकार
	प्रथम तीर्थंकर
	प्रथम राजा एवं धर्म के प्रथम प्रवर्तक
30. दीक्षा कल्याणक	चैत्र कृष्णा अष्टमी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, दिन का अन्तिम प्रहर।
31. वर्षीदान	प्रतिदिन एक करोड़, आठ लाख स्वर्ण मुद्राएं एक वर्ष में तीन अरब अट्ठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान।
32. शिविका का नाम	सुदर्शना।
33. लोचन	चार मुष्ठी।
34. दीक्षा के समय तप	बेले का तप।
35. दीक्षा लेते ही ज्ञान	मन: पर्यव ज्ञान हुआ।
36. पारणा	बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ और पौत्र श्रेयांसकुमार के द्वारा। पारणे से पूर्व राजा सोमप्रभ, कुमार श्रेयांस सुबुद्धि सेठ ने

	स्वप्न देखा। करपात्र से पारणा किया।
37.पारणे का दिन	✧ अक्षय तृतीया। जिस दिन पारणा हुआ उस दिन को अक्षय तृतीया कहा गया।
38.दीक्षा गुरू	✧ स्वयमेव। कोई गुरू नहीं।
39.दीक्षा साथी	✧ कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार पुरूष।
40.कलाएं	✧ पुरूषों की 72 व स्त्रियों की 64 कलाएं सिखाई।
41.तप	✧ एक वर्ष, एक माह व दस दिनों का।
42 केवली पर्याय	✧ एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व
43.केवल ज्ञान, तप	✧ फाल्गुन कृष्णा एकादशी को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में शकटमुख नामक उद्यान में ३ गाऊ ऊँचे, वटवृक्ष के नीचे, पुरिमताल नगर में तेले तप में

44.भगवान ऋषभदेव का धर्म परिवार –

गणधर	✧ 84
साधु	✧ 84 हजार, साध्वी–तीन लाख

श्रावक	तीन लाख पाँच हजार, श्राविकाएं—पांच लाख चौवन हजार।
चौदह पूर्वधर	चार हजार सात सौ पचास।
अवधिज्ञानी	नौ हजार।
केवल ज्ञानी	बीस हजार।
वैक्रिय लब्धिधारी	बीस हजार छः सौ पचास।
मनः पर्यवज्ञानी	बारह हजार सात सौ पचास। (12750)
वादी मुनि	बारह हजार छः सौ पचास (12,650)
अनुत्तर विमान में गए	बाइस हजार पाँच सौ।
45. पूर्ण आयु	84 लाख पूर्व।
46. प्रथम गणधर	ऋषभसेन उपनाम पुण्डरिकस्वामी।
47. प्रथम आर्या	ब्राह्मी आर्या जी।
48. प्रमुख श्रावक	श्रेयांस कु. श्रावक।
49. प्रमुख श्राविका	सुभद्रा श्राविका।
50. निर्वाण के समय ध्यान	शुक्ल ध्यान का चतुर्थ चरण।
51. परिषद्	१२ प्रकार की, चार देव, चार देवियाँ, मनुष्य, स्त्रियाँ, तिर्यंच व तिर्यंचनी।

52 भक्त राजा ✧ भरत चक्रवर्ती

53.भरत के पुत्र का नाम ✧ मरीचि।

54.निर्वाण कल्याणक ✧ माघ कृष्णा त्रयोदशी पर्यकासन में

55.निर्वाण राशि+नक्षत्र ✧ अभिजित नक्षत्र+ मकरराशि।

56.निर्वाण के समय तप ✧ छ: उपवास।

57.निर्वाण साथी ✧ दस हजार।

58.निर्वाण स्थल ✧ अष्टापद पर्वत।

59.गर्भ, जन्म, दीक्षा व केवल कल्याणक के समय उत्तराषाढ़ा नक्षत्र वनिर्वाण के समय अभिजित नक्षत्र था।

60 यक्ष + यक्षिणी ✧ श्री गोमुख-यज्ञ श्री चक्रेश्वरी देवी

61. निर्वाण का अन्तरकाल ✧ 50 लाख कोटि सागरोपम

62. माता–पिता की सद्गति ✧ माता–मरुंदेवी मोक्ष में
पिता–नागकुमार देव में

वर्षीतप-आराधना विधि

विधि से ही विधान प्रगट होता है।

बीज में से ही वृक्ष प्रकट होता है।

कोई कितना भी खोजे ईश्वर को बाहर में,

आत्मा में ही परमात्मा प्रगट होता है।

जैन समाज में वर्षीतप का बहुत महात्म्य है। इसे ऋषभदेव संवत्सर तप भी कहते हैं। प्रभु आदिनाथ को हुए असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु प्रभु द्वारा सहज आचरित वर्षीतप साधना आज भी उतनी ही जीवन्त व प्राणवान है। हजारों लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्त प्रभु की स्मृति में अपनी शक्ति के अनुसार वर्षीतप की आराधना करते हैं।

प्रभु आदिनाथ तो पूरे 400 दिन तक निर्जल निराहारी रहे। किन्तु पंचमकाल में शरीर मे इतनी सामर्थ्य कहाँ ? प्रभु महावीर ने इस काल में छः मासी उत्कृष्ट तप बताया, वह भी कोई विरले धीर–वीर ही कर पाते हैं।

अतः सामान्यतः एक दिन उपवास व एक दिन पारणा करके जो तप किया जाता है वह वर्षीतप के नाम से रूढ़ हो गया।

आज भी इस अर्थ में वर्षीतप बहुत करते हैं, किन्तु तप–विधि से अपरिचित होने से इतनी उत्कृष्ट तपस्या भी फलप्रद नहीं हो पाती।

विधि से विधान प्रगट होता है। वर्षीतप साधना की भी सुव्यवस्थित विधि है। किन्तु उससे अनभिज्ञ साधक मात्र एक दिन उपवास व एक दिन पारणे को ही वर्षीतप समझ बैठे तो यह बहुत बड़ी भूल है।

वर्षीतप-आराधना विधि

इस तप का प्रारम्भ (चैत्र कृष्णा अष्टमी) के दिन उपवास के साथ किया जाता है। उपवास के पारणे में बियासना और फिर उपवास ऐसे तेरह महीने ग्यारह दिनों तक निरन्तर तपस्या के बाद वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन पारणा करके इस तप की पूर्णाहुति दो वर्ष में की जाती है।

इस महान तपस्या के उपलक्ष्य में संघ वात्सल्य देवगुरू की भक्ति तथा दूसरे अनेक धर्मकार्यों के साथ तप की प्रभावना की जाती है।

वर्षीतप में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए–

(1) उपवास के नवकार की 20 माला

(2) प्रतिदिन 20 लोगस्स का ध्यान

(3) प्रतिदिन भगवान ऋषभदेव की 20 वन्दना

(4) पारणे के दिन 'श्री ऋषभदेवनाथाय नमः' की 20 माला

(5) सचित–पानी का त्याग

(6) प्रतिदिन रात्रि चौविहार

(7) सचित का त्याग (अचित होने के बाद ग्रहण कर सकते हैं)

(8) ब्रह्मचर्य पालन

(9) जमीकंद का त्याग

(10) उपवास के दिन स्नान नहीं करना

(11) प्रतिदिन एक सामयिक और प्रतिक्रमण (आता हो तो) अवश्य करना, नहीं तो दूसरे से ध्यानपूर्वक सुनना।

(12) प्रत्येक महीने की सुदी 3 को 'ऋषभ–चरित्र' का वाचन

करके भावविशुद्धि करना।

उपर्युक्त नियमों के साथ यथाशक्ति वर्षीतप की आराधना करने से चित्त प्रसन्नता व मोक्ष रूप श्रेष्ठफल की प्राप्ति होती है।

नोट– यदि उपवास से वर्षीतप नहीं होता हो तो आयंबिल या एकासना से भी वर्षीतप की आराधना की जा सकती है।

उपवास से करना उत्कृष्ट वर्षीतप है।

आयंबिल से करना मध्यम वर्षीतप है।

एकासने से करना जघन्य वर्षीतप है।

इति शुभम् भवतु।

प्रभु ऋषभदेव को निम्न पाठ

卐 बोलकर 20 वंदना करें 卐

ओम् श्री ऋषभदेवनायाय नमः

अहो प्रभु, इस काल में इस जगतितल पर आप ही परम पुरुषावतार रूप में सम्यक्दृष्टि सम्यक्ज्ञानी रूप में अवतरित हुये। आपने ही सर्वप्रथम बाह्य एवं आभ्यांतर ग्रंथि का छेदन किया। मुनिव्रत धारण करके रत्नत्रय की आराधना में लीन होकर निर्ग्रन्थ अप्रमत और वीतरागी मुनि भगवंत हुए। आपने ही सर्वप्रथम घाती कर्मों का क्षयकर राग–द्वेषादि भावों का नाशकर अनंत चतुष्ट्य स्वरूप में विराजमान हुए अष्टप्रातिहार्य और 34 अतिशयों से युक्त होकर भव्य जीवों के कल्याण के लिए धर्म तीर्थ की स्थापना करके मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। आदि जिन, जगदगुरू जगतकल्याणक आपके चरण–शरण में मेरी अनन्य प्रीति अनन्य निष्ठा, अनन्य बहुमान, अनन्य शरण प्राप्त हो और कोई मन में कामना नहीं रहे।

स्वबोध

भारतीय संस्कृति तप प्रधान संस्कृति है। उसमें भी जैनधर्म में विविध तपस्याओं का जितना सांगोपांग व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

'तवो जोई जीवो जोइठाणं—उत्तरा.अ.१२ गाथा ४४

तप ज्योति है और जीव ज्योति स्थान है।

'तवसा धुणई पुराण पावगं' दशवै. अ. १० गाथा ७

तप के द्वारा पुराने पाप नष्ट हो जाते हैं।

तप संबंधी ऐसी सैकड़ों सूक्तियाँ जैन शास्त्रों में बिखरी हुई हैं। जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर महापुरुष हुए, सभी तीर्थंकरों के साधनाकाल में विभिन्न तपस्याओं का प्राधान्य रहा। उन महापुरुषों की तप साधना सहज थी। उसी सहज साधना का यह आकर्षण है कि श्रद्धालु भक्तों की भावना आज तक बलवती है और इसका आकर्षण व तेज आगे भी ऐसा ही बना रहेगा।

तीर्थंकरों के जीवन–चरित्र से सम्बन्धित अनेक तप साधनाएँ प्रचलित हैं। जैसे प्रभु आदिनाथ से **वर्षीतप आराधना**, प्रभु मल्लिनाथ से **'मौन एकादशी'** प्रभु पार्श्वनाथ से **'पौष–दशमी'** चौबीस तीर्थंकरों के पंच कल्याणक तप एवं ज्ञान पंचमी आदि ऐसे तपोनुष्ठान हैं, जिनकी आराधना से हम सहजानंद में लीन होकर परमपद को पा सकते हैं।

दान–शील–तप व भाव हमारी आध्यात्मिक क्षुधा को शांत करते हैं। 'दानी' बाहर से खाली होता हुआ दिखता है, किन्तु खेत

में बीज वपन करने वाले कृषक की भाँति उसका, एक बीज सैकड़ों फल प्रदान करता है। 'तपस्वी बाहर से कृषकाय लगता' है, किन्तु भीतर में उसका आत्मिक तेज बढ़ता है। आत्मिक शक्तियाँ जागृत होती हैं, जिससे अनेकानेक लब्धियाँ व सिद्धियाँ साधक के चरण चूमती हैं।

मैंने हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते हुए 'रामवृक्ष बेनीपुरी' का एक 'गेहूँ बनाम गुलाब' प्रतीकात्मक निबन्ध पढ़ा। गेहूँ और गुलाब के माध्यम से लेखक ने बहुत ही सुन्दर विचार अभिव्यक्त किये है।

गेहूँ आर्थिक प्रगति का प्रतीक है तो गुलाब सांस्कृतिक प्रगति का। गेहूँ शरीर का पोषण करता है तो गुलाब मन को स्वस्थता प्रदान करता है। गेहूँ हमारा शरीर है तो गुलाब हमारी आत्मा।

भारतीय संस्कृति में आत्म–तत्त्व को ही ज्यादा महत्व प्रदान किया गया है। जनम–जनम से पेट के कोठे को भरने में लगी हुई स्वाभाविक वृत्ति सद्गुरू का उपदेशामृत पानकर पेट की चिन्ता छोड़कर आत्मोन्मुखी बनती है। जैसे शरीर के लिए गेहूँ जरूरी है, इसी तरह आत्मा के लिए गुलाब के सदृश तप अत्यावश्यक है।

साधक के लिये शास्त्र में एक शाश्वत संकेत प्राप्त होता है–

'संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरई' अर्थात् संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करे।

विभिन्न प्रकार की तपस्याओं की श्रृंखला में 'वर्षीतप' एक

सर्वश्रेष्ठ सुदीर्घ तपाराधना है। यह तप प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान के जीवनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना से सम्बन्धित है।

पंचमहाव्रत रूप धर्म को अंगीकार करने के बाद प्रभु आदिनाथ चार सौ दिनों तक निर्जल निराहारी रहे।

ग्राम–ग्राम, नगर–नगर विचरण करते हुए हमारे आराध्य देव घर–घर गोचरी पधारते थे, किन्तु निर्दोष आहार–पानी बहराने वाला कोई भी दाता उन्हें नहीं मिला।

यह कर्मोदय जन्य परिणाम ही था कि उस काल के सरल स्वभावी लोग अपने ह्रदय सम्राट् को कृषकाय देखकर कंचन कामिनी जैसी अनेक भेंट सामग्रियाँ प्रभु चरणों में समर्पित करना चाहते हैं, किन्तु प्रभु को आहार पानी बहराने की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। सभी इस बात से अनभिज्ञ थे और उसमें कारण बना पूर्वोपार्जित अन्तराय कर्म। अन्यथा अनंत चौबीसियों में प्रत्येक चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर को इतने दीर्घकाल तक निराहारी रहना पड़ा हो, ऐसा जिक्र कहीं भी नहीं आता है।

सर्वत्र कर्मों की सत्ता विद्यमान है। चाहे कोई राजा हो या रंक, साधु हो या गृहस्थ। निम्न पद से उपर्युक्त कथन के मार्मिक भाव को समझा जा सकता है–

दुनिया के चरा चर जीवों पर, कर्मों ने जाल बिछाया है।
क्या साधु–गृहस्थ, क्या बाल–वृद्ध बस कोई न बचने पाया है।।

प्रभु सम्राट थे, स्वामी थे, उन्हें इतना कठोर तप करने की आवश्यकता भी नहीं थी। उनके एक इशारे पर हजारों सेवक कार्यरत हो सकते थे। किन्तु जबसे प्रभु ने कर्मों को क्षय करने का दृढ़ संकल्प किया, तभी से सहज साधना में लीन हो गये। उनकी

सारी इच्छाएँ सहज योग में विलीन हो गईं। कर्मोदयजन्य प्राप्त परिस्थितियों के प्रति कोई क्षोभ नहीं मात्र ज्ञाता दृष्टा भाव में स्थित रह्कर प्रवृत्तियों का परिष्कार करना ही उनका एकमात्र ध्येय हो गया। वहाँ तो सब कुछ स्वीकार है, इंकार कुछ नहीं। प्रतिक्रिया की भावना ही समाप्त हो चुकी थी। सहज साधना में लीन प्रभु समाधिस्थ हो गये थे। सारी भेद रेखाएँ समाप्त हो गईं।

उन्हें कहाँ भान था कि 'मैं राजा हूँ' और अपने प्रजाजनों के घरों में भिक्षा हेतु परिभ्रमण कर रहा हूँ। वे तो प्रतिदिन शान्त व मौन भाव से गलियों में घूमते हुए कोई शाश्वत संकेत देते हुए पुनः जंगल में खो जाते थे। गुफाओं में ध्यानस्थ हो जाते थे।

अन्तराय कर्म की इस विचित्रता का कवि ने गीत की इन पंक्तियों में बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है:

जरा कर्म देखकर करिये, इन कर्मों की बहुत बुरी मार है,
नहीं बचा सकेगा परमात्मा, फिर औरों का क्या एतबार है ।।टेर।।
बारह घड़ी तक बैलों को बांधा, छींका लगा दिया खाने को।
बारह मास तक ऋषभ प्रभु को, आहार मिला नहीं दाने को।
इस युग के जो प्रथम अवतार हैं, बिन भोगे न छूटे लार है।।1 ।।

कर्मों का खाता सभी को ब्याज सहित चुकाना पड़ता है और कोई हो तो दया करे, पर कर्म सम्राट में कहाँ दया? वह तो जड़ है, पत्थरहृदयी।

12 घड़ी की छोटी–सी त्रुटि का फल भुगतना पड़ा 12 मास तक। 12 महीने की इस कठोर साधना ने सभी के दिलों को झकझोर दिया। यह घटना आज भी उतनी ही तरोताजा है जितनी तब थी और तब से अब तक वर्षीतप की महान परम्परा भी अक्षुण्ण

चली आ रही है।

भगवान ऋषभदेव के ही पुत्र महाबली बाहुबली भी राज्य लिप्सा त्याग करके एक ही स्थान पर एक वर्ष तक अडोल अकंप स्थिर आसन से खड़े रहे। शरीर पर माधवी लता छा गई। बाहुबली मुनि के विशाल व सुदृढ़ स्कन्धों पर पक्षियों ने घोंसले बना दिये। फिर भी वे दृढ़ संकल्पी साधक उसी ध्यान मुद्रा में खड़े रहे।

श्रवण बेलगोला में स्थित 57 फुट ऊँची बाहुबली की विशाल मूर्ति, जिस पर एक पक्षी तक नहीं बैठता, हमें बार–बार उस महासाधक की स्मृति दिलाती है।

इसके बाद कितनों ने एक वर्ष का कठोर तप किया होगा। उन सभी की नामावली तो अतीत के गर्भ में सुरक्षित है।

शेष 22 तीर्थंकरों के काल में उत्कृष्ट तप आठ मास का ही बताया गया। शासनपिता श्रमण भगवान महावीर के शासनकाल में छमासी उत्कृष्ट तपस्या का विधान है। निरन्तर शक्ति, धृति, समता, क्षमा का ह्रास हो जाने से एक वर्ष तक निराहारी रह पाना अशक्य है। फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार इस तप को स्वीकार करके भक्तगण सैकड़ों की संख्या में प्रतिवर्ष प्रभु चरणों में वर्षीतप के पुष्प अर्पित करते हैं। आज ऐसे भी साधक हैं, जिन्होंने आजीवन एकान्तर तपस्या करने का संकल्प लिया हुआ है।

'ऋषभ चरित्र' लिखने की मंगलमयी प्रेरणा मुझे ऐसे महान तपस्वियों को देखकर प्राप्त हुई। ऐसे दीर्घ तपस्वी जैन समाज में सैकड़ों की संख्या में हैं, उन सभी महान तपस्वियों का हृदय की अनंत गहराईयों से अभिनन्दन करते हुए शासन माता से प्रार्थना करती हूँ, उनकी तपस्या का तेज उन्हें परम ज्योति में विलीन

करने वाला सिद्ध हो। प्रभु ऋषभदेव की अनंत कृपा एवं महान तपस्वियों का शुभाशीर्वाद प्राप्त करके वर्षीतप के नये– नये साधक– साधिकाएँ प्रभु की सुदीर्घ तपाराधना का अनुकरण अनुगमन करते रहे।

इति शुभम्!

साध्य साधिका

साध्वी प्रियदर्शना श्रो 'प्रियदा'

तमिल के आद्यकवि—

(सुभाषित) तिरूवल्लुवर

तिरुकुरल (रचियता)

अगर मुदल एलुत्तेल्लाम्

आदी भगवन् मुदट्रे उलगु

'अ' अक्षर संसार की समस्त–भाषाओं में आद्य अक्षर है। इसी तरह संसार के प्रथम भगवान **'आदिनाथ'** है।

'अ' से अक्षय तृतीया,

'आ' से आदिनाथ

यही है प्रभु आदिनाथ से जुड़ा हुआ अक्षय–तृतीया **'महापर्व'**

ॐ श्री ऋषभदेवाय नमो

''णमो बंभिए लिविए'

卐 ऋषभ-चरित्र 卐

प्रथम अध्याय

''आदि पुरुष आदीशजिन, आदि सुविधि करतार।
धरम धुरन्धर परमगुरू, नमो आदि अवतार।''

अखिल मानव संस्कृति के आदि प्रणेता, भरतक्षेत्र के प्रथम पृथ्वीनाथ महाराज ऋषभदेव नंदनोद्यान के लतामंडप में स्फटिक शीला पर विराजमान थे। धीर, गंभीर महाराज मंत्र-मुग्धता से प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर रहे थे। प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए महाराज कभी स्वभावतः अन्तर्मुखी होकर आत्मानन्द में लीन हो जाते थे।

वसंतऋतु का शुभारम्भ हो चुका था। नंदनवन पंचवर्णी पुष्पों की रूप छटा को बिखेर कर पंच परमेष्ठिमय श्री ऋषभदेव एवं अयोध्यावासियों का स्वागत करता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। पवन के संचरण से पुष्पों की सौरभ चतुर्दिक फैलकर वातावरण को मादक बना रही थी। अशोक, बकुल, कदंब आदि वृक्षों की डालियाँ पुष्पों के भार से झुकी हुई थीं। समूचे वन प्रदेश की शोभा अनन्य व दर्शनीय थी।

कोयल पंचम स्वर में नगरवासियों को वसंतश्री के आगमन

की सूचना दे रही थी। भ्रमर–समूह फूलों पर गुंजार कर रहा था। मलयाचल की हवा संपूर्ण वन–प्रदेश को सुरभि व शीतलता से भर रही थी। तालाब व सरिताओं में स्फटिकवत् शीतल स्वच्छ व शांत जल प्रवाहित हो रहा था।

वसंत पंचमी के शुभ दिन अयोध्यावासी रंग बिरंगे परिधानों से सुसज्जित होकर सम्राट् श्री ऋषभदेव के साथ नंदनोद्यान में वसंतोत्सव का आनन्द ले रहे थे। व्यापारी अपनी दुकानों में नहीं थे। कृषकगण खेतों में काम करते हुए नहीं दिख रहे थे। गोपालों का पशुधन स्वतन्त्र विचरण कर रहा था। सभी नंदनवन में वसंतोत्सव का आनन्द ले रहे थे।

स्त्रियाँ विविध रंगों में सुन्दर पुष्पहारों को गूँथकर अपने जीवनधन के गलों में हार पहनाकर हर्षित हो रही थीं। कुछ दम्पत्ति झूला झूल रहे थे। कुछ लोग हास्य–विनोद करते हुए स्वतन्त्र विचरण कर रहे थे। कुछ कुलवधुएँ एकान्त वाटिकाओं में बतरस में लीन थीं। बाल मंडलियाँ विविध खेलों का मजा ले रही थीं। उनकी किलकारियों व हँसी दिशाएँ अनुगुंजित हो रही थीं।

महाराज ऋषभदेव उन दृश्यों को देखकर भी नहीं देख रहे थे। सहज में ही अन्तर्मुखी होकर चिंतन सागर में गहरे चले जा रहे थे।

देवराज शक्रेन्द्र ने मनोरंजन का अनुकूल अवसर जानकर नीलांजना अप्सरा को नृत्य करने का आदेश दिया। दर्शकों की दृष्टि नीलांजना के ऊपर जम–सी गई। नीलांजना विद्युत–आभा के

सदृश रसमग्न होकर नृत्य कर रही थी। उसका प्रत्येक अंग थिरक रहा था। लय ताल के साथ उसके अंगों का स्फुरण व संचालन अद्भुत व दर्शनीय था। तभी अचानक आयुष्य समाप्त हो जाने से नीलांजना के अंगों का स्पंदन रुक गया। शकेन्द्र पहले से ही सावधान थे। उन्होंने तत्क्षण अविलंब नीलांजना के स्थान पर उसी नृत्यमुद्रा में अन्य देवी को खड़ा कर दिया। इस परिवर्तन का आभास किसी को नहीं हुआ। सभी दर्शकगण पूर्ववत् ही मंत्र–मुग्धता से नृत्य का आनन्द ले रहे थे।

लेकिन महाराज ऋषभदेव जो जन्म से ही तीन ज्ञानों के धारक थे, इस परिवर्तन से भीतर तक कांप उठे। यह घटना उस अलौकिक पुरूष के लिए सामान्य नहीं रही। गम्भीर चिंतन सागर में डुबकी लगाते हुए महाराज के नेत्र स्वतः बन्द हो गये।

अहा! पहली नीलांजना का विनाश व तत्काल दूसरी नीलांजना की उत्पत्ति बस इसी तरह तो संसार में द्रव्यों की पर्यायों में उत्पत्ति व लय का क्रम अनादि काल से चल आ रहा है। प्रत्येक द्रव्य की सत्ता अनादि निधन होते हुए भी पर्यायों में प्रतिपल परिवर्तन होता रहती है।

संसार रूपी रंगमंच पर मात्र परिवर्तन होते रहते हैं पर रंगमंच में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता। इसी तरह मूल–सत्ता शाश्वत ध्रुव व अचल है।

श्री ऋषभदेव की आत्मानुभूति तीव्रतर होती जा रही थी। विचार मग्न महाराज को अपने आयुष्य के अन्तिम क्षण का भास

हुआ। जैसे दीपक में प्रथम लौ समाप्त होती है और तत्क्षण दूसरी लौ उत्पन्न हो जाती है। इसका आभास सामान्य दर्शकों को नहीं होता। फिर भी जब तक दीपक में तेल विद्यमान है, तब तक उत्पत्ति–विलय, विलय–उत्पत्ति का क्रम निरन्तर चलता रहता है। इसी तरह जीवन दीप में भी जब तक आयुष्य का तेल विद्यमान है, तब तक इसका प्रकाश जनजीवन को आलोकित कर रहा है। आयुष्य का तेल कब समाप्त हो जायेगा कहा नहीं जा सकता। एकाएक जागृत होते हुए – ''फिर अहो!'' ऐसी क्रीडाएँ और ऐसे मनोरम नृत्य तो पिछले अनेक जन्मों में मैनें कई बार देखे हैं। यह उन्हीं पूर्वानुभूत संस्कारों का क्षणिक सुखाभास है। अहा! नाशवान सुखों में मग्न रहने वाले प्राणियों को धिक्कार है। सांसारिक सुखों की प्राप्ति हेतु राग, द्वेष व मोह से ग्रसित प्राणियों का जन्म रात्रिवत् व्यर्थ ही चला जाता है।

काम भोगों में आसक्त प्राणी कषाय जल से आपूरित कूप में डूबे रहते हैं, अपने आत्म–धन से वंचित रहकर पौद्गलिक प्रपंचों में उलझे हुए प्राणियों को इस भव परभव यावत् सैकड़ों भवों तक भी स्वतन्त्र सुखों का अनुभव नहीं हो पाता है।

अहा! अनेकानेक पराधीनताओं की बेड़ियों से जकड़े हुए भयाकुल प्राणियों को इधर–उधर भागते हुए देखकर मेरा हृदय कांप रहा है।

कहाँ सुख है? निर्भयता का मार्ग कौन सा है?

इन्हें नहीं मालूम।

'वैराग्यमेवाभयम्'—'वैराग्यमेवाभयम्'

अब धर्म–तीर्थ प्रवर्त्तन की आवश्यकता है। लोगों को व्यवहार विषयक समस्त विद्याओं का ज्ञान हो गया है।

प्रथम कुम्भकार–शिल्प से लेकर मकान बनाना, चित्र कर्म करना आदि कलाओं का सभी को यथोचित ज्ञान हो गया है।

संसार की सुव्यवस्था के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद नीतियों का प्रचार–प्रसार भी अच्छी तरह से हो गया है।

मेरे दोनों पुत्र भरत और बाहुबली बहत्तर कलाओं के पारगामी हो गए हैं ब्राह्मी और सुंदरी भी चौंसठ कलाओं में प्रवीणा बन गई हैं। 98 पुत्र भी 72 कलाओं के साथ असि, मसि, कृषि विद्या के पारगामी बन गए हैं। मेरा ज्येष्ठ पुत्र भरत इस अवसर्पिणी काल का प्रथम चक्री बनने का पुण्य साथ में लेकर आया है। तो महाबली बाहुबली हाथी, घोड़े, स्त्री–पुरूष के लक्षण जानने में पारंगत हो गया है। सुपुत्री ब्राह्मी को अठारह लिपियों का तथा सुन्दरी को गणित विद्या का ज्ञान परिपूर्ण है। उग्र, भोग राजन्य व क्षत्रिय कुलों की रचना भी व्यवस्थित हो गई है। दंडनीति से लोग अच्छी तरह से परिचित हो गये हैं।

मेरे द्वारा प्रवर्तित व्यवहार ज्ञान से लोगों का जीवन अच्छा चल रहा है। कृषक समुदाय अथक परिश्रम से खाद्य–सामग्री उत्पन्न करता है। योग्य भाग अपने पास रखकर सभी के जीवन के धारण में सहायक बनता है, ग्वाले पशुओं को पूर्ण सद्भाव से

पालते हैं। आपस में लूटमार की तो कोई कल्पना तक नहीं कर सकता है । माताएँ संतान का पालन पोषण अच्छी तरह से करती हैं, पिता पितृधर्म को समझने लगे हैं। पति–पत्नी भी परस्पर प्रेम व स्नेह से काम करते हैं। 'संसार की सुव्यवस्था को देखकर मुझे आत्मतोष है। श्री ऋषभदेव की विचार श्रृंखला आगे बढ़ती है।'

इहलौकिक जीवन को सुखी बनाने के लौकिक कर्त्तव्य पूर्ण हो चुके हैं, अब पारलौकिक जीवन को सुखी बनाने के लिए संसार को धर्म मार्ग पर जोड़ने के लिए धर्म–तीर्थ प्रवर्तन की अत्यन्त आवश्यकता है। मेरी आयुष्य के 20 लाख पूर्व युवराजपने में ही बीत गये। 63 लाख पूर्व राज्य व्यवस्था संभालने में लग गये। अब धर्म स्थापनार्थ राज्य विसर्जन का समय आ गया है। इन लोगों को संसारासक्ति से विमुख करके धर्म मार्ग पर जोड़ने की जरूरत है।

सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए प्राणी–जगत अनादिकाल से छटपटा रहा है, लेकिन दुःखों से छुटकारा पाने का सही ज्ञान उसे नहीं है। सम्यक् भावों का उदय, सम्यक् दृष्टाओं के मार्ग का अनुसरण करने पर ही होगा।

द्वितीय अध्याय

महाराज ऋषभदेव विचारों में मग्न थे। तभी पंचम स्वर्ग के ब्रह्मलोक के अन्त में रहने वाले अरूण, आदित्य, सारस्वत आदि नव लोकांतिक देव नन्दन वन के अप्रतिम सौन्दर्य को निहारते हुए वहाँ आते हैं। जहाँ श्रीऋषभदेव चिन्तन सागर में डूबे हुए थे, तीन ज्ञान के धारक प्रभु ने मुस्कान बिखेरते हुए उनका सुस्वागत किया।

मृदंग जैसी मधुर ध्वनि एक साथ उनके मुख से स्वतः निसृत हुई :

'बुज्झह' 'बुज्झह' अर्थात् हे प्रभो! बुद्ध बनो, बुद्ध बनो।
'मा मुज्झह' 'मा मुज्झह', अर्थात् संसार में मुग्ध न रहो,
'उट्ठाही' 'उट्ठाही' अर्थात् उठिये, उठिये। और
'पट्ठाही' 'पट्ठाही' अर्थात् प्रस्थान कीजिए, प्रस्थान कीजिए।

इस प्रकार देवों ने अपने जीताचार के अनुसार सविनय मुस्कुराते हुए प्रार्थना की।

'हे त्रिलोकीनाथ! अब धर्म तीर्थ का प्रवर्त्तन करके संसार का कल्याण कीजिये।'

श्री ऋषभदेव ने 'तथास्तु' कहकर मुस्कुराते हुए उनको सानुरोध स्वीकार किया।

रात्रि की नीरवता में वनिता नगरी के हृदय सम्राट पुनः आत्मानन्द में गोते लगाने लगे। उषा के आगमन के साथ ही अनासक्त योगी श्री ऋषभदेव ने अपनी बलवती भावना, जो अब दृढ़ निश्चय का रूप ले चुकी थी, वह अपनी माता व सभी पुत्रों के समक्ष प्रकट की। वायु के संचार के साथ ही अल्प समय में यह समाचार सारी नगरी में फैल गया।

भरतादिक कुमारों, स्वामी भक्त सचिवों, सेवकों तथा

समस्त प्रजाजनों के दुःख का पारावार नहीं रहा। ऐसा लगता था मानो सारी जनता दुःख व शोक के सागर में डूब गई हो। सभी को एक दूसरे की अपेक्षा अधिकाधिक दुःख था। मरुदेवी माता को अपना 'ऋषभ' श्वासोच्छवास के समान परमप्रिय था, उन्हें ऋषभ की ये बातें सुनकर अत्यन्त दुःख हो रहा था। धर्म विषयक जानकारी नहीं सभी मात्र होने पर विरह पीड़ा से पीड़ित थे।

लोकशासक श्री ऋषभदेव ने अपने निश्चय पर अग्रसर होने से पूर्व भरतादिक कुमारों को पृथक्–पृथक् देशों का राज्यभार सौंपा। सबसे बड़े पुत्र भरत को **'अयोध्या'** का सम्राट घोषित किया तो द्वितीय पुत्र महाबली बाहुबली को **'पोदनपुर'** का राजा बनाया गया। अन्य अट्ठावन पुत्रों को भी अन्य छोटे–छोटे देशों राजा घोषित किया। सभी का राजतिलक समारोह बड़े उत्साह व उमंगों के साथ संपन्न हुआ।

सभी राज्याधिकारियों को राजनीति व धर्मनीति का यथोचित ज्ञान करवा दिया। सभी पुत्रों ने समान रूप से अपने पिता का शुभाशीर्वाद प्राप्त करके सत् शिक्षाएँ ग्रहण कीं। उसी दिन से अनासक्त योगी श्री ऋषभदेव वर्षभर के लिए दान देना प्रारम्भ कर देते हैं।

प्रतिदिन सवा प्रहर दिन चढ़े तब तक 1 करोड़ 8 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं।

सम्पूर्ण भारत क्षेत्र के अमीर–गरीब, सेठ–साहूकार, ऊँच–नीच, निर्धन–धनवान सभी यह सोचकर कि श्री ऋषभदेव के समान दान दाता हमें कब और कहाँ मिलेगा श्रद्धापूर्वक अपनी इच्छानुसार दान प्राप्त कर स्वयं को धन्य समझते थे।

इस तरह वर्ष भर में प्रभु ने 'तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख' का दान किया जिसे भव्य प्राणियों ने ग्रहण करके अपना संसार परिमित किया।

तृतीय अध्याय

ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ। चैत्र मास की कृष्णाष्टमी का शुभ दिन आ ही गया। आज सम्पूर्ण वनिता नगरी में भारी चहल–पहल थी। श्री ऋषभदेव के महाभिनिष्क्रमण की तैयारियाँ हो रही थीं। देवगण भी प्रभु के दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित थे। देवनिर्मित अद्‌भुत शिविका में विराजमान वैराग्यमूर्ति प्रभु ऋषभदेव की वह छवि दर्शनीय थी। चतुर्थ प्रहर में विशाल समुदाय के साथ प्रभु नंदनोद्यान में पधारे। सुन्दर व बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का प्रभु ने क्षणभर में सर्प केंचुलीवत् परित्याग कर दिया। कोमल व सच्चिकण केशों का चारमुष्टि लुंचन किया। अपार भीड़ प्रभु द्वारा कृत व आचरित उस नवीन **धर्म क्रिया** को देखकर दंग रह गई। सम्पूर्ण आत्मबल के साथ प्रभु ने **'णमो सिद्धाणं'** का उच्चारण करते हुए **पंच महाव्रत** रूप धर्म स्वीकार किया।

आन्तरिक प्रीति से बंधे हुए कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं से प्रभु का वियोग सहन नहीं हुआ **'गतानुगतिको लोकः'** के अनुसार वे भी प्रभु ऋषभदेव के समान ही अपने पुत्रों को राज्यश्री सौंपकर **गृह त्यागी** बन गये। साधुचर्या से अनभिज्ञ वे मात्र प्रभु चरणों का अनुगमन करने में लगे रहे।

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम साधु श्री ऋषभ द्रव्य भाव रूप से निर्ग्रन्थ बनकर जंगल, पर्वत, उद्यान, शहर आदि स्थानों में

समभावपूर्वक विचरण करने लगे। छः महीने तक प्रभु निराहार रहकर मौन साधना करते रहे। देह में रहते हुए भी देहातीत अवस्था की अनुभूति प्रबल से प्रबलतम होती गई और प्रभु वीतरागता के सन्निकट पहुँचते गये।

तपस्या में **अत्यधिक तल्लीनता** के कारण ही **''आदिमबाबा''** के रूप में प्रसिद्ध हुए।

कच्छ महाकच्छ आदि साधु प्रभु की उत्कृष्ट तप, मौन व ध्यान साधना को देखकर दंग रह गये थे। जबसे वे सभी दीक्षित हुए तभी से उन्हें प्रतीक्षा थी कि प्रभु कभी तो हमें विधि–निषेध का मार्ग बताएंगे।

किन्तु प्रभु तो **निस्पृह भाव** से आत्माभिमुख होकर **आत्म संशोधन** में तल्लीन थे। प्रभु धैर्यता व सहिष्णुता के अगाध सागर थे। सरिता व कुएँ बावड़ियों का निर्मल व शीतल जल तथा वृक्षों के सुस्वादु फल प्रभु को अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकते थे। कितने ही समय तक कच्छ महाकच्छ आदि साधु भी पताकावत् प्रभु के मार्ग का अनुसरण करते रहे, किन्तु उनके धैर्यता व सहिष्णुता की सीमा आ गई। भूख व प्यास सताने लगी। निर्मल जल से भरे हुए सुन्दर सरोवरों को देखकर उनका मन लुभा जाता था। सुस्वादु रसदार फल उनके भूखे पेट के आगे मानो भेंट चढ़ाये जाते थे। मार्ग में लोगों द्वारा दी गई बहुमूल्य भेटें उनकी सुप्त मनोवृत्ति को जाग्रत करती थीं।

प्रभु ऋषभदेव **42** दोषों से रहित विशुद्ध आहार की गवेषणा हेतु नगर–नगर, ग्राम–ग्राम, ऊँच, नीच, मध्यम कुलों में घूमते थे। साधु समाचारी से अनभिज्ञ सरल स्वभावी लोगों को आहार पानी देने का तो विचार ही उत्पन्न नहीं होता, वे तो अपने महाराजाधिराज हृदय सम्राट को नग्न अवस्था में देखकर बहुमूल्य वस्त्राभूषण, उत्तम जाति के हाथी, घोड़े, रथ तथा मणिमाणिक्यादि की भेटें उनके चरणों में समर्पित करना चाहते थे। इतना ही नहीं वरन् अप्सरा के सदृश सुन्दर व **सर्वगुण संपन्न कन्या रत्न** समर्पित करके अपने पास रखने का आग्रह करते। किन्तु सभी भौतिक भावों से निसंग व निस्पृह प्रभु उनके अनुग्रहों को इकरार या इंकार किये बिना ही अधोनयन किये हुएं मौन रहकर आगे बढ़ जाते ।

बहुमूल्य भेंट सामग्रियों के प्रति उपेक्षित प्रभु को आगे बढ़ते देख भोले लोग समझ नहीं पाते ।लोगों की अन्तर्व्यथा दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। किन्तु प्रभु की उदासी का व बिना कुछ ग्रहण किये प्रतिदिन जंगल की ओर लौट जाने का कारण किसी की समझ में नहीं आ रहा था। लोग परस्पर वार्तालाप करते हुए कहते 'बहुमूल्य भेंट सामग्रियों की तरफ भगवन् आँख उठाकर देखते तक नहीं यह हमारा कैसा दुर्भाग्य है।

भूख व प्यास के परिषह को अग्लान भावों से सहन करते हुए प्रभु ग्रामानुग्राम विचरण करते , किन्तु किसी भी स्थान पर उन्हें निर्दोष आहार पानी उपलब्ध नहीं हो पाता था ।

चट्टान की भाँति दृढ़ और पर्वत की तरह अडोल, अकंप प्रभु को देखकर अन्य चार हजार मुनि शनैः शनैः शिथिलाचारी बनते गये। उन्होंने परस्पर विचार किया कि समुद्र का उल्लंघन करने वाले गरूड़राज की भाँति महासत्वशाली प्रभु ऋषभदेव का साथ हमारे जैसे क्षुद्र प्राणी कैसे निभा सकते हैं। अतः हमें कोई सरल मार्ग खोजना चाहिए। सभी ने सोचा 'प्रभु निराहारी, निष्परिग्रही हैं, किन्तु हमारे लिये आजीवन उतनी कठोर प्रतिज्ञा का निर्वाह कर पाना अशक्य ही नहीं असंभव है। अतः हम कंद, मूल, फल, फूल आदि खाकर जीवन धारण करेंगे। ऐसा विचार करके उन सभी ने स्वेच्छा से अपना-अपना मार्ग चुन लिया। कोई कंदाहारी बना, कोई मूलाहारी तो कोई फूल-फलाहारी। कोई एक दंडी कहलाया तो कोई त्रिण्डी। किसी ने जटा रखनी आरम्भ कर दी तो किसी ने रूद्रा। इस प्रकार नाना तापस और नाना वेश बन गये।

चार हजार मुनियों के विपथगामी हो जाने की प्रभु को चिंता नहीं थी। अमरता के राही प्रभु पूर्ववत् ही भूख प्यास को समभाव से सहन करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे। भयंकर आंधियों से निष्कंप पर्वतचलित हो सकते हैं, किन्तु भगवान अपने निश्चय से स्वप्न में भी कभी विचलित नहीं हुए।

चतुर्थ अध्याय

वैशाख शुक्ला तीज का सूरज मानो अक्षययश का लाभ लूटने को ही उदित हुआ था। हस्तिनापुर के भाग्योदय का शुभ दिन था। हवा की भाँति अप्रतिबद्ध विहारी प्रभु आदिनाथ अपने पवित्र चरण–कमलों से पृथ्वी को सुशोभित करते हुए हस्तिनापुर पधारे।

महाराजा बाहुबली के पौत्र व सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस राजा हस्तिनापुर की राज्य व्यवस्था को संभालते हुए सुखपूर्वक रह रहे थे। श्रेयांसकुमार रात्रि में अर्धसुप्तावस्था में एक स्वप्न देखकर जागृत हुए। रात्रि में देखे स्वप्न पर वे पुनः–पुनः विचार करने लगे।

''मैं श्यामल बने हुए स्वर्णगिरि को दूध से भरे घट से अभिषिक्त करके उज्जवल बना रहा हूँ।'' श्रेयांस कुमार शांतचित्त से सोच रहे हैं–''कौनसा स्वर्णगिरि है, जिंसे मैं दूध से अभिषिक्त कर रहा हूँ?'' गहन चिन्तन के बाद भी वे इस प्रतीकात्मक स्वप्न का अर्थ समझ नहीं पाये।

इधर उसी रात में सुबुद्धि श्रेष्ठि ने भी एक स्वप्न देखा कि– ''श्रेयांसकुमार ने सूर्य से निसृत सहस्त्रों किरणों को पुनः सूर्य में प्रतिष्ठित किया है। जिससे वह और अधिक प्रकाशमान हो उठा है।''

सोमप्रभ राजा ने भी श्रेयांसकुमार से सम्बन्धित एक स्वप्न देखा–''श्रेयांसकुमार के सहयोग से अनेक शत्रुओं द्वारा सर्वतः घिरे हुए राजा ने विजयश्री प्राप्त की।''

सभी दरबारियों के साथ श्रेयांसकुमार, सुबुद्धि श्रेष्ठी तथा राजा सोमप्रभ तीनों स्वप्न फलादेश पर विचारमग्न थे।

प्रभु ऋषभदेव के हस्तिनापुर शुभागमन के समाचार जहाँ–जहाँ पहुँचे वहाँ–वहाँ के लोग बरसाती नदी की भाँति उमंग व उत्साह के साथ दौड़–दौड़कर दर्शनार्थ आने लगे। बाल, युवा, वृद्ध सभी प्रभुदर्शन करने को लालायित थे। दूध पिलाती हुई माताएँ, काम करते हुए कारीगर, खेती करते हुए कृषकगण, खेलते हुए बालक सभी शीघ्र ही प्रभु चरणों में पहुँचने लगे।

मनुष्य तो क्या जंगल में स्वतन्त्र विचरण करने वाले गाय, बैल, शेर, चीता, हाथी आदि पशु भी अपने– अपने स्वामी के साथ प्रभु के दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। जिसको जिस समय भी समाचार प्राप्त हुआ, सभी अविलम्ब प्रभु के समीप पहुँच गये। दर्शनों की यह दुर्लभ घड़ी कौन खो सकता था?

"किन्तु अरे, यह क्या?"

प्रभु के दर्शन करके सभी निश्चेष्ट व अवाक् थे। हमारे हृदय सम्राट तो मुण्डित सिर और नंगे पाँव राजचिह्नों व वस्त्राभूषणों से रहित राजमार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। यह अनहोना दृश्य देखकर बहुत–से भावुक हृदयी लोगों की आँखों से श्रावण–भादवा बरसने लगा। आँखों से अश्रुधारा बहाते हुए वे परस्पर कह रहे थे–

"अहो! हमारे स्वामी के महल में ऐसी कौनसी अशुभ घटना घटित हो गई?"

अनाथों के नाथ, दीनदयालु प्रभु को इस अवस्था में देखकर कुछ समझदार लोग विनती करने लगे।

"प्रभो! हमारे घर पधारो! प्रभो! हमारे घर पधारो।"

"आपकी कमजोर काया को हमारी अभागी आँखें देख नहीं सकतीं। हे स्वामिन्! थोड़े दिन हमारे ऊपर कृपा करके हमारे घर पधारकर विश्राम कीजिए।"

आगे बढ़ते हुए प्रभो को कोई पाँवों के पकड़कर कहता, हे महान् उपकारी! स्नान के लिये गरम जल तैयार है। पहनने के लिये सुन्दर वस्त्राभूषण हाजिर हैं। दयालु! कृपा करके हमारा जन्म सार्थक कर दो।

कोई प्रभु का मार्ग रोककर दृढ़तापूर्वक कहता –"हे स्वामी! आज यह अनुपम अवसर आया है, हमें निराश नहीं कीजिए।" हे दीनानाथ! घर पर पधारकर अप्सरा के सदृश विश्वमोहिनी सुन्दरी कन्या को स्वीकार करके मेरी वर्षों की अभिलाषा पूर्ण कीजिये।"

वैराग्यमूर्ति श्रीऋषभदेव उनके आग्रहों पर ध्यान नहीं देते हुए मौन भाव से राजमार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। प्रभु की ऐसी उदासीनता व अखंड मौन से लोगों की व्यथा व व्याकुलता बढ़ती जा रही है।

वे परस्पर कहने लगे– "अरे! हमारे स्वामी को क्या चाहिए ? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। जिन करुणानिधि के नाम से नवनिधि प्रकट होती है, जिनका हमारे ऊपर अनंत–अनंत उपकार है, वे आज इतने शून्यचित्त एवं अनजान क्यों आगे बढ़े चले जा रहे हैं ? लोगों का कोलाहल बढ़ता जा रहा है। कोई इस रहस्य को जान नहीं पा रहा था कि इतने दिनों से प्रभु कहाँ थे ? और आज हमारी नगरी में इस तरह क्यों घूम रहे हैं ?"

स्वामी ठहरो! स्वामी ठहरो! इस प्रकार भक्तिपूर्वक पुकारते हुए लोग प्रभु के पीछे भागे जा रहे थे। इस कोलाहल के साथ स्त्रियों व बच्चों के रुदन की आवाज राजसभा में विराजमान विगत रात्रि में देखे हुए स्वप्नों पर विचार–विमर्श करते हुए श्रेयांसकुमार के साथ समस्त सभासदों ने सुनी, तो उन सभी का कौतुहल भी जाग्रत हो गया।

एक स्वामिभक्त सेवक ने बताया–"महाराज! हमारे

अहोभाग्य हैं कि देवाधिदेव त्रिलोकीनाथ आपके पितामह श्री ऋषभदेव इस भूमण्डल पर अकिंचन भाव से विचरण करते हुए हमारे **पुण्य कोष** को सफल करने के लिए हमारी नगरी में पधारे हैं। जन-समूह प्रभु के स्वागतार्थ उमड़ रहा है।''

सेवक के आधे शब्द तो मुँह में रह गये-''श्रेयांसकुमार के साथ सारे राजदरबारी जैसे थे वैसे ही अविलंब उठ-उठकर राजमार्ग की ओर बढ़ने लगे।''

श्रेयांसकुमार ने प्रथम बार इस दशा में अपने पितामह को देखा तो वे प्रभु के चरणों में गिर पड़े, आँखों से बहती हुई अश्रुधारा मानो चरणाभिषेक कर रही थी। उत्तरीय वस्त्र से प्रभु के चरणों को पोंछकर वे पुनःपुनः प्रभु की आदक्षिणा-प्रदक्षिणा व वन्दना-नमस्कार करने लगे। बार-बार चरण-वन्दना करने के पश्चात् श्रेयांस ने तप-तेज से देदिप्यमान किन्तु अन्न-पाणी के अभाव में एकदम क्षीणकाय प्रभु को देखा। जातिस्मरण ज्ञान होते ही उन्हें अपने कर्त्तव्य का भान हो आया। पारणा कराने के उद्देश्य से वे सम्मानपूर्वक प्रभु को राजमहल में ले आये।

कहा जाता है-'शुभकार्य शुभभावों का अनुसरण करते हैं। पुण्य प्रबल हो तो, अनुकूल साधन सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। कृषकों ने आज बड़े ही मनोयोग से इक्षुरस के सैकड़ों घड़े भर लिये और खुशी-खुशी महाराज को समर्पित करने आ पहुँचे। श्रेयांसकुमार ने बयालिस दोषों से रहित विशुद्ध इक्षुरस देखा, तो प्रभु को उसे ग्रहण करने की भावभीनी विनती की।

''हे परम कृपालु देव! यह एकदम निर्दोष इक्षुरस आप ग्रहण कीजिये।''

निष्परिग्रही प्रभु ने अपना करपात्र मुँह को लगा दिया। श्रेयांस कुमार बड़े ही भावों से प्रभु के करपात्र में इक्षुरस की

अखण्ड धारा प्रवाहित करने लगे।

इस अनिर्वचनीय आनन्द को लूटने के लिए असंख्य देवी देवता, मानव बालक–बालिका तथा तिर्यंच पशु–पक्षी वहाँ उपस्थित हो गये। **जय–जय नाद** से दिशाएँ गूँज उठी। देवताओं ने **'अहोदानं' 'अहोदानं'** की घोषणा की। आकाश से देवी–देवताओं के द्वारा अनवरत पंचदिव्यों स्वर्णमुद्रा, वस्त्र पंचवर्णी पुष्प वसुधा की वृष्टि दिव्यध्वनि की तब तक होती रही जब तक श्रेयांसकुमार एक के बाद एक कलश उठा उठाकर इक्षुरस की अखंड धारा बहाते रहे। इक्षुरस के एक सौ आठ कलशों से तृप्त हो जाने के बाद प्रभु ने अपने दोनों हाथों को समेट लिया।

श्रेयांसकुमार ने प्रभु की पदरज श्रद्धा से अपने मस्तक पर लगाई। प्रभु ने पूर्ववत् ही मौन भाव से जंगल की ओर प्रयाण कर दिया। उस दिव्य विभूति की शान्त, दांत, गम्भीर मुखमुद्रा से सभी बहुत प्रभावित हुए। श्रेयांसकुमार बार–बार अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

सभी लोग अपनी अलग–अलग मंडलियाँ बनाकर श्रेयांस राजकुमार के पुण्य की सराहना कर रहे थे। **''धन्य है श्रेयांस राजा जिन्होंने इक्षुरस के दान से भवोभव की बाजी जीत ली।''** धन्य है प्रथम दानी श्रेयांस राजकुमार।

वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन इक्षुरस के दान से अमर हो गया।

घर–घर में मंगलोत्सव मनाया गया। गली–गली जय जयकारों से गूँजने लगीं। लोग श्रेयांसकुमार के दान की सराहना करते हुए अघाते नहीं थे। धन्य है प्रथम दानी श्रेयांस कुमार और धन्य है कृपावतार भगवान् ऋषभदेव।

भगवान ऋषभदेव वर्षीतप का पारणा करने के बाद विहार

कर चुके थे। हस्तिनापुर में कई दिनों तक इस दिन की पावन स्मृति में मंगल महोत्सव मनाए जाते रहे। सभी तरफ खुशियाँ छाई हुई थीं, किन्तु फिर भी लोगों की जिज्ञासाओं का समाधान नहीं होने से उनका मन बहुत व्यथित था।

सरल स्वभावी लोगों के मन में पुनः पुनः रहस्यमयी घटना से संबधित कई बातें उठती थीं कि – हमने प्रभु चरणों में सर्वस्व अर्पित करना चाहा, किन्तु हाय हमारा हतभाग्य कि उन बहुमूल्य भेंट सामग्रियों को ग्रहण करना तो दूर, प्रभु ने उनकी तरफ नजर उठाकर भी नहीं देखा। चलो उनकी तरफ नहीं देखा तो कुछ नहीं, लेकिन हमने क्या बिगाड़ा था प्रभु का ? अहा, श्रेयांस द्वारा किये गये इक्षु रस पर हमारे स्वामी कितने रीझ गये। उसको सहजता से स्वीकार कर लिया। ऐसा हमारे से कौन सा घोर अपराध हो गया ? इस तरह की वे अनेक बातें सोच रहे थे। आखिर सभी ने एक साथ निर्णय किया और श्रेयांसकुमार से ही इस रहस्य का पता लगाने के लिये राजमहल की ओर चल पड़े।

श्रेयांसकुमार लोगों की पुकार सुनकर नीचे आ गये। मुस्कराते हुए उन्होंने एक नजर से सभी की ओर देखा और इतने बड़े समूह का एक–साथ मिलकर आने का कारण जानना चाहा।

लोगों के मन की बात आज मन में समा नहीं रही थी। वे तो श्रेयांसकुमार के पूछने की प्रतीक्षा किये बिना ही बोल पड़े।

''महाराज आप धन्य हैं आप परम सौभाग्यशाली हैं जो प्रभु ने आपके हाथों से इक्षुरस ग्रहण किया। हमारे जैसे अभागियों को हजार बार धिक्कार है. हमारे सर्वस्व त्याग की ओर प्रभु ने आँख उठाकर भी नहीं देखा। वर्षों तक पुत्रवत् पालन करने वाले हमारे हृदय सम्राट् इतने अनजान बनकर परायों जैसा व्यवहार करेंगे, ऐसी हमें स्वप्न में भी आशा नहीं थी, किन्तु कृपावतार प्रभु का ऐसा

व्यवहार देखकर हमारे हृदय के सैंकड़ों टुकड़े हो गये। हम समझ नहीं पा रहे हैं कि आखिर इस सारे घटनाचक्र का अन्तरंग रहस्य क्या था? आप प्रभु के विशेष कृपापात्र बने, अतः हम आपसे ही जानने के लिए यहाँ समुपस्थित हुये हैं। आप अनुग्रह करके कुछ बतायेंगे तो हम सैकड़ों जन्मों तक आपका उपकार नहीं भूलेंगे।''

श्रेयांस कुमार ने सभी को यथास्थान बैठाकर शांतिपूर्वक कहा–

''प्रजाजनो! आपको निर्ग्रन्थ साधु का परिचय नहीं होने से ही इतना सोचने के लिये बाध्य होना पड़ा। वस्तुतः इसमें आप सभी का कोई दोष नहीं है। अज्ञान दशा में हम वस्तुस्थिति समझ नहीं पाते । मैं भी अज्ञानी था, श्रमण धर्म की मर्यादाओं से अनजान था, किन्तु जैसे ही मैंने प्रभु को देखा तो पूर्वभव के संस्कार जागृत हो गये।

मैं स्वयं पूर्व जन्म में साधु था। मैंने साधुचर्या को समझा और प्रभु को निर्दोष इक्षुरस स्वीकार करने को कहा–प्रभु ने आज 400 दिन की तपस्या का पारणा किया है।''

सज्जनों! भगवान् ऋषभदेव अब पहले की तरह सत्ताधारी राजा नहीं है। अब वे समस्त पापमय व्यापारों के व बाह्याभ्यंतर परिग्रह के त्यागी बन चुके हैं। प्रभु ने राग–द्वेष, मोह–विषय–विकारादि सभी वैभाविक भावों का परिहार कर दिया है फिर वे किसलिये आप द्वारा प्रदत्त हाथी, घोड़े, मणि–माणिक्यादि तथा सुन्दरी कन्याओं को स्वीकारेंगे?

वे दयालु, वीतरागी प्रभु सभी को अभय प्रदान करने वाले हैं, वे राग–द्वेष तथा मोह–माया प्रपंचों से सर्वथा दूर हैं। निर्ग्रन्थ भिक्षुक होने से ऐषणीय प्रासुक व कल्पनीय आहार ही ग्रहण करते हैं।

श्रेयांसकुमार ने विस्तार से संयमी जीवन की मर्यादाओं पर प्रकाश डाला और आहार बहराने की विधि भी लोगों को समझाई। सभी बातें ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कुछ समझदार लोगों ने एक प्रश्न उठाया। प्रभु ने जैसे शिल्पादिक कलाएँ हमें सिखाईं, वैसे ही हमें **मुनि धर्म** का ज्ञान क्यों नहीं कराया?

''जिज्ञासा का सम्यक् समाधान करते हुए राजकुमार ने कहा—सुज्ञजनों! आपकी शंका समुचित है। महाराज ऋषभदेव इस युग के प्रथम साधु बने। उनसे पूर्व कोई साधु ही नहीं था तो वे किसको लक्ष्य करके साधु—समाचारी का ज्ञान कराते? तथा एक बात यह भी है कि तीर्थंकर जब तक सर्वज्ञानी नहीं हो जाते तब तक वे संयम से सम्बन्धित विधि निषेध का मार्ग नहीं बताते।''

आज से पहले मुझे भी इस बात का ज्ञान नहीं था, लेकिन, जैसे सूर्योदय होते ही कमलिनी विकसित हो जाती है, उसी प्रकार प्रभु के मुखचन्द्र को देखते ही मुझे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। मैं प्रभु के साथ बिताये हुये अपने पूर्वभवों को वर्तमान जीवन की तरह ही साक्षात् अनुभव करने लगा हूँ।

लोगों ने पुनः जिज्ञासा की—प्रभु के साथ आपका पूर्वभव में क्या सम्बन्ध था?

श्रेयांसकुमार ने उसी माधुर्यता के साथ पुनः कहना प्रारम्भ किया—'बंधुओं! स्वर्गलोक व मनुष्य लोक में मैंने प्रभु के साथ आठ भव किये। इस भव के तीसरे भव में जब प्रभु वज्रनाभ चक्रवर्ती थे, तब मैं उनका सारथी था। उनके पिता वज्रसेन को मैंने तीर्थंकर के रूप में देखा था। चक्रवर्ती वज्रनाभजी ने जब संयम स्वीकार किया, तब मैं प्रीतिवश उनके साथ ही साधु बन गया तथा स्वयंप्रभादिक भवों में भी मैं साथ—साथ रहा हूँ। इस प्रकार विस्तार से अपने पूर्वभवों के बारे में बताकर राजकुमार ने सभी की जिज्ञासाओं को

शांत किया।'

प्रजाजनों! इसके साथ एक और महत्त्वपूर्ण रहस्य को मैं अनावृत्त कर देना चाहता हूँ। सभी सोमप्रभ राज़ा की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

गतरात्रि श्रेयांसकुमार ने, मैंने व सुबुद्धि श्रेष्ठि ने एक ही शुभ घटना की ओर संकेत करने वाले तीन स्वप्न देखे। हम तीनों नित्यक्रम से निवृत्त होकर सवेरे से ही इन स्वप्नों के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। इन तीनों स्वप्नों का सम्बन्ध श्रेयांसकुमार से ही था। मेरे आत्मज श्रेयांस ने स्वप्न देखा, "एक श्यामल बने हुए स्वर्णगिरि को वह दुग्ध से सिंचित कर रहा है।"

मैंने जो स्वप्न देखा वह भी श्रेयांस से ही सम्बंधित था— "चारों तरफ से शत्रुओं से घिरे हुये राजा को श्रेयांस की सहायता से विजयश्री प्राप्त हुई" तथा सुबुद्धि श्रेष्ठि ने जो स्वप्न देखा वह भी उपर्युक्त दोनों स्वप्नों की भाँति श्रेयांस से जुड़ा हुआ था। उन्होंने देखा, "सूर्य से निःसृत सहस्त्र किरणों को श्रेयांसकुमार ने पुनः सूर्य में आरोपित किया, जिससे सूर्य पहले से भी अधिक तेजस्वी होकर चमकने लगा।"

प्रिय प्रजाजनों! हम राजसभा में समुपस्थित होकर विचार कर ही रहे थे कि—"आज श्रेयांसकुमार के द्वारा कोई शुभ कार्य होगा। तभी राजमार्ग से गुजरते हुये प्रभु ऋषभदेव को श्रेयांसकुमार ने रोककर इक्षुरस बहराया। एक वर्ष से निराहारी प्रभु का आज पारणा हुआ, अतः हम तीनों ने जो स्वप्न देखे वे पूर्णतया सार्थक हुए । तपतेज से दीप्त स्वर्णगिरी के सदृश प्रभु का श्रेयांस ने इक्षुरस से सिंचन किया। इतने दिनों से प्रभु क्षुधा तृषा आदि सैकड़ों परिषहरूपी शत्रु सेना से आक्रांत थे, उनका श्रेयांस ने इक्षुरस का पान कराकर पराभव किया तथा सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु

कालान्तर में केवलज्ञान से अधिक सुशोभित होंगे।''

सज्जनों! शुभ कार्यों की सूचना हमें प्रकृति से पहले ही मिल जाती है। अतः सुकर्तव्यों में रुचि को बढ़ाते हुये प्रभु द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर आत्मकल्याण करना ही श्रेयस्कर है।

आज सभी ने अपने जीवन का सही महत्त्व समझा। अतः उनके हर्ष का कोई पारावार नहीं था। सभी अपने जीवन की इन घड़ियों को सार्थक समझने लगे। श्रेयांसकुमार जन–जन के श्रद्धा केन्द्र व प्रियपात्र हो गये। धन्य हैं, कृपासिन्धु, महातपस्वी भगवान् ऋषभदेव और धन्य है प्रथम सुपात्र दानी महाभाग्यवान श्रेयांसकुमार।

इस तरह इक्षुरस से प्रभु के पारणे की महिमा स्थान–स्थान पर, गाँव–गाँव में, शहर–शहर में यावत् अखिल विश्व में गाई जाने लगी। इस महिमा गान से हजारों के पाप धुल गये। लाखों करोड़ों के कार्य सिद्ध हो गये।

यह पवित्र दिन अक्षय व अनंत सुख प्रदान करने वाला है, अतः आज करोड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी इस दिन को 'अक्षय तृतीया' या 'आखा तीज' के नाम से पहचाना जाता है। प्रभु ऋषभदेव व श्रेयांसकुमार के साथ इस दिन ने भी 'अमर कीर्ति' प्राप्त की। इस अक्षय–तृतीया की महिमा को पढ़कर या सुनकर अनेकों ने अपना आत्मोद्धार किया है और अनेक भव्यात्माएँ आत्मोद्धार करेंगी।

सभी श्रेष्ठ कार्यों के लिए यह दिन परम पवित्र माना जाता है और सदाकाल इसकी पवित्रता अखंडित रहेगी।

पिता

परमपितामह प्रभु ऋषभदेव के श्री चरणों में भाव–वंदन सविनय समर्पण

पिता जीवन है, संबल है, शक्ति है
पिता सृष्टि के निर्माण की अभिव्यक्ति है

पिता अंगुली पकड़े बच्चे का सहारा है
पिता कभी कुछ मीठा है तो कभी कुछ खास है

पिता पालन–पोषण है, परिवार का अनुशासन है
पिता भय से चलने वाला प्रेम का प्रशासन है

पिता रोटी है, कपड़ा है, मकान है
छोटे से परिन्दे का बड़ा आसमान है

पिता अप्रदर्शित, अनन्त प्यार है
पिता है तो बच्चों को इंतजार है

पिता से ही बच्चों के ढेर सारे सपने हैं
पिता है तो बाजार के सब खिलौने अपने हैं

पिता से परिवार में प्रतिपल राग है
पिता से ही माँ की बिन्दी और सुहाग है

पिता परमात्मा की जगत के प्रति आसक्ति है
पिता गृहस्थाश्रम में उच्च स्थिति की भक्ति है

पिता अपनी इच्छाओं का हनन और परिवार की पूर्ति है
पिता रक्त में दिए हुए संस्कारों की मूर्ति है
पिता एक जीवन को जीवन दान है
पिता दुनियाँ दिखाने का अरिसा है

पिता सुरक्षा है, अगर सिर पर हाथ है
पिता नहीं तो बचपन अनाथ है

तो पिता से बड़ा तुम अपना नाम करो
पिता का अपमान नहीं, अभिमान करो

क्योंकि माँ–बाप की कमी कोई पाट नहीं सकता
ईश्वर भी इनके आशीषों को काट नहीं सकता

दुनियाँ में किसी भी देवता का स्थान दूजा है
माँ–बाप की सेवा ही सबसे बड़ी पूजा है

विश्व में किसी भी तीर्थ की यात्रा सब व्यर्थ है
यदि बेटे के होते हुए माँ–बाप असमर्थ है

वो खुशनसीब होते हैं, माँ–बाप जिनके साथ होते हैं
क्योंकि माँ–बाप की आशीषों के हजारों हाथ होते हैं।

प्रभु ऋषभदेव–परिचय अनुशीलन

भगवान श्री ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर थे। उन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है। प्रभु ऋषभदेव वर्तमान विश्व के आदि सभ्य–संस्कृति पुरुष, आदि राजा, आदि शिक्षक, आदि मुनि और आदि सर्वज्ञ थे। उन्होंने पाषाण काल में अभावग्रस्त मानव–समाज को नई व्यवस्थाएं देकर उसके अभावों को मिटाया। उन्होंने मनुष्यों को क्षुद्र मानसिकताओं और स्वार्थों से ऊपर उठाकर उन्हें सहज जीवन और 'परस्परोपग्रहो जीवनाम्' का पाठ पढ़ाया। उन्होंने तत्कालीन मनुष्यों की न केवल भूख का निदान किया था, अपितु उन्हें अध्यात्म के सूत्र देकर मोक्ष का मार्ग भी दिखाया।

प्रभु ऋषभदेव सभ्य विश्व के जनक थे। उनसे पूर्व का मानव घोर असंस्कारित, अज्ञानी और अकर्मण्य था। उसका अज्ञान और अकर्मण्यता ही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता और शत्रु बन गई थी। अनायास उपलब्ध भोजन– सामग्री कम थी और उसे खाने वाले अधिक थे। जहाँ भूख से भोजन कम हो; वहां द्वन्द का जन्म होना स्वाभाविक बात है। उस समय के मनुष्य परस्पर लड़ने–झगड़ने लगे थे। जहां कहीं वृक्षों पर लटके फल देखते, वहीं अनेक मनुष्य एक साथ सब झपटते। परस्पर विवाद होता। इसी विवाद ने उस आदिम मनुष्य का सहज–सरल सुखमय जीवन विषाक्त बना दिया था।

ऐसे समय में, मानव समाज द्वारा एक ऐसे मसीहा की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जो स्वार्थ से ऊपर उठकर मनुष्य के ज्ञान नेत्र खोल, उसे अकर्मण्यता के भंवर–जाल से

बाहर निकालकर श्रम की विधि और मूल्य समझाए, तथा जो करुणापूर्ण हृदय से उपज रही समस्याओं के समाधान खोजकर उनकी स्थापना मनुष्यों के हृदय में करे। ऐसे समय में, प्रभु ऋषभदेव का अवतरण हुआ। उन्होंने मनुष्य को अकर्म युग से निकालकर कर्म युग की नई व्यवस्थाएं देकर उसका जीवन–मार्ग प्रशस्त किया।

जैन मतानुसार, 20 कोटा–कोटि सागरोपम का एक कालचक्र होता है। एक कालचक्र में बारह आरे (भाग) होते हैं। इसके छः आरे अवसर्पिणी काल कहलाते हैं जबकि छः आरे उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी का सामान्य अर्थ है– अवनति। और उत्सर्पिणी की अर्थ है– उन्नति। अवसर्पिणी कालचक्र में मनुष्य के बल, वीर्य, सुविधाएं, आरोग्य तथा सद्‌गुण क्रमशः समय के साथ–साथ अल्प से अल्पतर होते जाते हैं, जबकि उत्सर्पिणी काल में सद्‌गुण अल्प से बहुत होते जाते हैं।

वर्तमान काल–प्रवाह अवसर्पिणी काल है। इस कालचक्र में प्रथम आरे को **सुखमा–सुखमा** कहा जाता है। दूसरे आरे का नाम है– सुखमा। तृतीय आरा है– **सुखमा–दुखमा।** चतुर्थ आरा है– **दुखमा–दुखमा।** पंचम आरा है– दुखमा, और अन्तिम तथा छठा आरा होगा **दुखमा–दुखमा।** आरों की नामावलि से ही यह सहज जाना जा सकता है कि अवसर्पिणी काल में सुखों का निरन्तर ह्रास होता है।

अवसर्पिणी काल के पहले, दूसरे तथा तीसरे आरे के अन्त से कुछ पहले तक, तत्कालीन मनुष्यों की इच्छापूर्ति कल्पवृक्षों से होती थी। उस युग के मनुष्यों को भूख लगती तो वे कल्पवृक्षों के फलों से अपनी क्षुधा मिटा लेते थे। उस समय प्रकृति सहज शान्त

रहती थी। न अधिक गर्मी होती थी और न अधिक सर्दी। अतः तत्कालीन मनुष्य ने ऋतुओं के प्रकोप के अभाव में घर बनाने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की थी। उस समय मनुष्य समाज में बंध कर नहीं रहता था। जंगल ही उसका निवास था।

उस युग का मानव यौगलिक कहलाता था। यौगलिक का अर्थ है युगल! अर्थात् पति–पत्नी का जोड़। तत्कालीन मनुष्य की कामेच्छा मतिमन्द थी। पति–पत्नी जीवन के अन्तिम दिनों एक बार संभोग करते थे जिसके परिणामस्वरूप उन्हें एक पुत्र और एक पुत्री की प्राप्ति होती थी। यही पुत्र–पुत्री यौवनावस्था में परस्पर साथी बनकर विचरण करते थे और बाद में पति–पत्नी का रूप धारण कर लेते थे।

जनसंख्या अत्यल्प थी। कल्पवृक्षों की प्रचुरता थी। लेकिन समय सदा सम नहीं रहता है। अवसर्पिणी काल ने अपना प्रभाव दिखाना प्रारंभ कर दिया। तृतीय आरे के अन्तिम समय में कल्पवृक्षों की शक्ति क्षीण हो गई और जनसंख्या बढ़ गई। साधन अल्प हो गए। उपभोक्ता अधिक हो गए। परिणामस्वरूप परस्पर विवाद होने लगे।

अव्यवस्था से व्यवस्था का जन्म होता है। तत्कालीन मानव ने उत्पन्न अभाव के संकट से उपजे विवाद को सुलझाने के लिए परस्पर साथ बैठना–उठना शुरू किया। लोग झुण्डों–समूहों–कबीलों में बंटकर रहने लगे। ये एक व्यक्ति को अपने कुल (कबीले) का नेता चुन लेते थे। यह नेता कुलकर कहलाता था। कुलकर व्यवस्था के चलते हुए सातवें कुलकर हुए नाभिराज। उन तक पहुँचते–पहुंचते, कुलकर व्यवस्था निष्प्रभावी हो चली थी। इसके पीछे कारण यह था कि कुलकर केवल पारस्परिक विवाद तो मिटा

सकते थे। परन्तु अभावजनित भूख का उनके पास समाधान न था। लोग परस्पर झगड़ते विवाद कुलकर के पास पहुंचता। कुलकर उनसे भविष्य में न लड़ने के लिए कहते। इस पर, लोगों का उत्तर होता— आप भोजन का प्रबन्ध कर दीजिए, हम नहीं लड़ेंगे। महाराज नाभिराय के पास इस समस्या का समाधान नहीं था। वे स्वयं को इस दायित्व से मुक्त करना चाहते थे। ऐसे समय में प्रभु ऋषभदेव का जन्म हुआ था।

पूर्वभव— प्रभु ऋषभदेव के तेरह भवों का वर्णन प्राप्त होता है। तेरह भव पूर्व, प्रभु महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठनगर के संपन्न सार्थवाह के रूप में थे। उनका नाम था—धन्ना सार्थवाह। वे व्यापार के लिए दूर देशों में जाते थे।

एक बार वे व्यापार के लिए विदेश जाने वाले थे। उन्होंने नगर में घोषणा कराई कि जो भी व्यक्ति अर्थोपार्जन के लिए उनके साथ जाना चाहे, वे उसकी आने—जाने की समुचित व्यवस्था करेंगे और उसका खर्च वहन करेंगे। यह घोषणा सुनकर अनेक लोग सार्थवाह के साथ चलने को उद्यत हो गए।

उस समय, आचार्य धर्मघोष भी क्षितिप्रतिष्ठनगर में विराजित थे। वे दूर देश में स्थित बसंतपुर नगर में जाना चाहते थे। लेकिन बीच में सैकड़ों कोस लम्बा वन पड़ता था। उन्होंने भी इस सार्थ के साथ यह यात्रा तय करने का मन बना लिया।

यात्रा प्रारंभ हुई। सैकड़ों लोगों का भोजन बनता था। उसमें से कल्प्य (शास्त्र—सम्मत) आहार को मुनि जन ग्रहण कर लेते थे। धन्ना सार्थवाह का भी मुनियों से परिचय हुआ। मुनियों की कठिन चर्या और उत्कृष्ट साधना को देखकर उसका हृदय उनके प्रति आस्था से भर गया। वह प्रतिदिन मुनियों के निकट बैठता, धर्मचर्या

करता और उनकी वाणी सुनता। इससे उसे सम्यक्त्व रूपी अमूल्य रत्न की उपलब्धि हुई। वह दृढ़ धमानुरागी बन गया।

धन्ना सार्थवाह ने सम्यक्त्व रूपी रत्न से अपनी आत्मा को आलोकित करके देव भव प्राप्त किया। वे पुनः मनुष्य बने। इस प्रकार उन्होंने मनुष्य और देव के दस भव किए।

प्रभु ऋषभ का जीव ग्यारहवें भव में महाविदेह क्षेत्र की पुष्कलावती विजय में राजकुमार **वज्रनाभ** के रूप में उत्पन्न हुआ। कालान्तर में **वज्रनाभ** राजा बने। वे राजा से चक्रवर्ती सम्राट बने। चक्रवर्ती रूप में बहुत वर्षों तक शासन करने के पश्चात् उन्हें भोगों से विरक्ति हो गई। उन्होंने छह खण्ड के साम्राज्य को तिनके की भांति ठुकरा दिया। वे मुनि बने। मुनि बनकर उन्होंने घोर तप किया। परिणाम स्वरूप उन्होंने 'तीर्थंकर नाम कर्म' का पुण्य बन्ध किया।

सुदीर्घ काल तक **वज्रनाभ** मुनि ने उत्कृष्ट संयम का पालन करते हुए अनशनपूर्वक देह का त्याग किया। वे सर्वार्थसिद्ध विमान में महर्द्धिक देव बने।

अवतरण–33 सागरोपम का सुखायुष्य पूर्ण करके **वज्रनाभ** का जीव नाभिराय कुलकर की अर्द्धांगिनी मरुदेवी की पावन कुक्षी में अवतरित हुआ। माता मरुदेवी ने रात्री के चतुर्थ प्रहर में चौदह महान् स्वप्नों के दर्शन किए। वे चौदह स्वप्न क्रमशः इस प्रकार थे– 1. वृषभ 2. विशाल आकार तथा चार दांतों वाला हाथी, 3. सिंह 4. कमलासन पर विराजित लक्ष्मी 5. पुष्पमाला, 6. पूर्णचन्द्र, 7. सूर्य, 8. महेन्द्रध्वज, 9. स्वर्णकलश, 10. पद्मसरोवर, 11. क्षीर समुद्र, 12. देव विमान, 13. रत्न राशि, 14. निर्धूम अग्नि।

स्वप्न–दर्शन के पश्चात् महामाता मरुदेवी की निद्रा टूट गई।

वे अपनी शय्या पर उठ बैठीं। उनका तन–मन निर्भार होकर अनन्त प्रसन्नता से परिपूर्ण हो उठा था। उन्होंने अपने पति नाभिराय को जगा कर उन्हें अपने अद्‌भुत स्वप्नों के बारे में बताया।

स्वप्न–चर्चा सुनकर महाराज नाभिराय बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी बुद्धि की कसौटी पर उस स्वप्न–श्रृंखला को कसते हुए उद्‌घोषणा की– देवी! तुम्हारी कुक्षी में जगत्राता पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ है। वह अपने पुण्य–प्रभाव से जगत में फैल रही अराजकता को मिटाकर नवीन पुण्य–सृष्टि का संस्कर्ता होगा। जगत में अब पुण्य का मंगल प्रभात होने वाला है और इस प्रभात की जन्मदात्री प्राची होने का सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा।

माता मरुदेवी के हर्ष का ठिकाना न रहा। वह प्रमुदितमना बनी अपने गर्भस्थ पुण्यशाली आत्मा का पालन–पोषण करने लगी।

"मरुदेवी मैय्या ने देखे चौदह स्वपने"

जन्मोत्सव— नौ माह व्यतीत होने पर, चैत्र कृष्ण अष्टमी की मध्य रात्री में माता **मरुदेवी** ने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। *प्रभु का जन्म हुआ। दसों दिशाएं आलोकित हो उठीं। तीनों लोक* आह्लादित हो उठे। नारकीय प्राणी भी क्षण—भर के लिए पीड़ामुक्त हो गए थे। शीतल—सुगन्धित वायु ने ठुमक—ठुमक कर नृत्य प्रारंभ कर दिया था।

चौंसठ इन्द्रों और असंख्य देवताओं ने सम्मिलित होकर प्रभु का जन्म—महोत्सव मनाया। महाराज शकेन्द्र ने माता **मरुदेवी** की निद्राधीन करके प्रभु को अपनी गोद में उठा लिया। वे उसे सुमेरू पर्वत के पाण्डुक वन में ले गए। वहां पर प्रभु को क्षीरोदधि आदि समुद्रों के पवित्र जल से स्नान कराया गया। देवी—देवताओं ने अपूर्व उत्सव रचाए। देवांगनाओं ने नृत्य किए। तत्पश्चात् इन्द्र ने प्रभु को माता मरुदेवी के पास पहुंचा दिया।

दूसरे दिन, प्रातः हजारों यौगलिक एकत्र हुए। जन्मोत्सव विधि से अपरिचित यौगलिकों ने देवों का अनुसरण करते हुए प्रथम बार इस शिशु का जन्मोत्सव मनाया। सभी के मन प्रसन्न थे और उज्जवल भविष्य की कामना से भरे थे।

नामकरण — प्रभु का नामकरण महोत्सव मनाया गया। बड़ी संख्या में यौगलिक एकत्रित हुए। महाराज नाभिराय ने कहा— इस पुण्यवान् शिशु के गर्भ में आते ही इसकी माता ने सर्वप्रथम वृषभ का स्वप्न देखा था। इसके साथ ही इस शिशु के उरू प्रदेश में वृषभ का चिह्न भी अंकित है अतः इसे वृषभ नाम से पुकारा जाए। शिशु के साथ जन्मी कन्या को सुमंगला नाम प्रदान किया गया।

प्रभु की इक्षुप्रियता तथा वंश उत्पत्ति— प्रभु ऋषभदेव से पूर्व तक, वंश या जातियों का प्रचलन नहीं था। एक बार प्रभु एक वर्ष के थे वे अपने पिता नाभिराय की गोद में बालक्रीड़ा कर रहे थे।

सौधर्मेन्द्र प्रभु के दर्शनों के लिए आए। उनके हाथ में एक इक्षुदण्ड था। शिशुस्वरूप प्रभु ऋषभ ने बालसुलभ चंचलता दिखाते हुए इन्द्र के हाथ से वह इक्षुदण्ड ग्रहण कर लिया। इन्द्र कृतकृत्य हो उठे। उन्होंने देखा–बालक ऋषभ उस इक्षुखण्ड को चूसने का यत्न कर रहा है। इन्द्र ने घोषणा की– 'यह बालक इक्षुप्रिय है अतः इसके वंश का नाम इक्ष्वाकु वंश प्रसिद्ध होगा।' इस प्रकार प्रभु का वंश इक्ष्वाकुवंश के नाम से विख्यात हुआ।

यौवन और विवाह –ऋषभदेव युवा हुए। उनका विवाह उनकी सहजाता सुमंगला से सम्पन्न हुआ। उस युग में बहुविवाह–प्रथा नहीं थी। सर्वप्रथम प्रभु ऋषभ ने ही बहुविवाह–प्रथा का सूत्रपात किया। इसके पीछे एक घटना थी। एक यौगलिक कन्या थी–सुनन्दा। उसके माता–पिता तथा सहजाता मर चुके थे। वह अकेली जंगलों में भटकती हुई घूम रही थी। एक दिन माता मरुदेवी ने उसे देखा तथा उसका परिचय पूछा। उसकी एकाकी दशा पर करुणार्द्र होकर माता उसे अपने साथ ले आई और पुत्र ऋषभ के साथ–साथ उसका पालन–पोषण भी करने लगी। सुनन्दा ऋषभ के साथ ही जवान हुई। अतः उसका विवाह भी ऋषभ के साथ ही सम्पन्न किया गया। उस युग में किसी पुरुष द्वारा किए गए दो विवाहों की यह प्रथम घटना थी।

सन्तान– प्रभु ऋषभदेव की पत्नी सुनन्दा ने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्र का नाम बाहुबलि और पुत्री का नाम सुन्दरी रखा गया। प्रभु की दूसरी पत्नी सुमंगला ने भरत आदि निन्यानवे पुत्रों और ब्राह्मी नामक एक पुत्री को वे जन्म दिया। इस प्रकार प्रभु के सौ पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हुई। भाइयों में सबसे बड़े भरत थे और बाहुबलि दूसरे नम्बर पर थे।

इस प्रकार उस युग की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने लगी। बहु विवाह और बहुसन्तान का क्रम चलने लगा।

भगवान के पुत्र–पुत्रियों के नाम इस प्रकार हैं–

1. भरत	2. बाहुबली	3. शंख
4. विश्वकर्मा	5. विमल	6. सुलक्षण
7. अमल	8. चित्रांग	9. ख्यातकीर्ति
10. वरदत्त	11. दत्त	12. सागर
13. यशोधर	14. अवर	15. थवर
16. कामदेव	17. ध्रुव	18. वत्स
19. नन्द	20. सूर	21. सुनन्द
22. कुरू	23. अंग	24. बंग
25. कौशल	26. वीर	27. कलिंग
28. मागध	29. विदेह	30. संगम
31. दशार्ण	32. गम्भीर	33. वसुवर्मा
34. सुवर्मा	35. राष्ट्र	36. सुराष्ट्र
37. बुद्धिकर	38. विविधकर	39. सुयश
40. यशःकीर्ति	41. यशस्कर	42. कीर्तिकर
43. सुषेण	44. ब्रह्मसेण	45. विक्रान्त
46. नरोत्तम	47. चन्द्रसेन	48. महसेन
49. सुसेण	50. भानु	51. कान्त
52. पुष्पयुत	53. श्रीधर	54. दुर्द्धर्ष
55. सुसुमार	56. दुर्जय	57. अजयमान
58. सुधर्मा	59. धर्मसेन	60. आनन्दन

61. आनन्द	62. नन्द	63. अपराजित
64. विश्वसेन	65. हरिषेण	66. जय
67. विजय	68. विजयन्त	69. प्रभाकर
70. अरिदमन	71. मान	72. महाबाहु
73. दीर्घबाहु	74. मेघ	75. सुघोष
76. विश्व	77. वराह	78. वसु
79. सेन	80. कपिल	81. शैलविचारी
82. अरिंजय	83. कुंजरबल	84. जयदेव
85. नागदत्त	86. काश्यप	87. बल
88. वीर	89. शुभमति	90. सुमति
91. पद्मनाभ	92. सिंहा	93. सुजाति
94. संजय	95. नाम(सुनाम)	96. नरदेव
97. चित्तहर	98. सुखर	99. दृढ़रथ
100. प्रभंजन		

दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने भगवान ऋषभदेव के 101 पुत्र माने हैं। उस पुत्र का नाम था वृषभसेन। भगवान ऋषभदेव की पुत्रियों के नाम–

1. ब्राह्मी, 2. सुन्दरी

राज्याभिषेक–जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती जा रही थी। साधनों की सीमितता तद्युगीन मनुष्य के लिए चिन्ता का विषय बनी थी। कुलकर नाभिराय जानते थे कि उनका पुत्र ऋषभदेव ही वर्तमान में उपज रही जनसमस्याओं का स्थायी समाधान कर सकता है, अतः उन्होंने अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

यौगलिक समुदाय ऋषभदेव का बहुत आदर करता था। सभी ने उन्हें अपना राजा स्वीकार कर लिया। यौगलिकों ने अत्यन्त विनीत भाव से प्रभु ऋषभ का राज्याभिषेक किया। इन्द्र ने यौगलिकों की इस विनीतता को देखकर प्रसन्न होते हुए वहां पर एक सुन्दर नगर बसाया जिसे नाम दिया गया विनीता नगरी।

कर्मयुग का सूत्रपात– ऋषभदेव ने राजा बनने के पश्चात् कर्मयुग का सूत्रपात किया। उन्होंने लोगों को तीन सूत्र दिए–

(अ) कृषि कर्म

(ब) मसि कर्म

(स) असि कर्म

उस युग के मनुष्य की प्रथम समस्या भूख थी। प्रभु ने कहा 'भाइयों' कल्पवृक्षों की निर्भरता को छोड़ दो। अपने श्रम पर आश्रित बनो। कृषि करना सीखो। विवेकपूर्वक अपने श्रम का उपयोग करो। अन्न का एक कण हजार कणों के रूप में बदलकर तुम्हें प्राप्त होगा। ऋषभदेव ने स्वयं अन्न–उत्पादन की कला लोगों को सिखाई। लोगों ने श्रम करना प्रारंभ कर दिया। विशाल–उपजाऊ भूमि की कमी न थी। शीघ्र ही लोग प्रचुर अन्न प्राप्त करने लगे। उनकी भूख की समस्या का उन्हें स्थायी समाधान उपलब्ध हो गया था। उस युग में प्रभु ऋषभदेव को अन्नदाता के रूप में स्वीकार किया।

मसि कर्म– कृषि कर्म के पश्चात् ऋषभदेव ने लोगों को मसि कर्म अर्थात् शिक्षा जगत् की ओर उन्मुख किया। उन्होंने शिक्षा का महत्व बताया और अपनी पुत्री ब्राह्मी के सहयोग से लोगों को लिखना–पढ़ना सिखाया।

असि कर्म—तत्पश्चात् प्रभु ने असि कर्म अर्थात् शस्त्रास्त्रों की कला में लोगों को निपुण बनाया। इसके पीछे उनका लक्ष्य था—निर्बल अपने हकों की रक्षा कर सकें। उन्होंने एक ऐसे वर्ग को तैयार किया जो शस्त्रास्त्र चलाने की कला में निपुण बना। उस वर्ग को समाज की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया।

कृषि, मसि और असि रूप इन तीन सूत्रों को पाकर वह युग सुखी और सम्पन्न हो गया। प्रभु ऋषभदेव को उस युग ने अपनी आस्था का केन्द्र स्वीकार कर लिया था। लोग उन्हें बाबा कहकर पुकारते थे। जब भी वे किसी नवीन समस्या में दौड़कर बाबा के पास पहुंचते और उनसे उस समस्या का स्थायी समाधान पाकर सन्तुष्ट हो जाते थे।

ऋषभदेव ने अपने पुत्र—पुत्रियों के सहयोग से विभिन्न कलाओं से तद्युगीन मानव—समाज को अलंकृत किया था। प्रभु ने अपने बड़े पुत्र भरत के सहयोग से पुरुष की बहत्तर कलाओं का ज्ञान—शिक्षण लोगों को सिखाया। उन्होंने लिपि के सूत्र दिए, जिन्हें आधार बनाकर ब्राह्मी ने अठारह प्रकार की लिपियाँ सृजित कीं और उनका प्रचार—प्रसार किया। अपनी छोटी पुत्री सुन्दरी को प्रभु ने गणित ज्ञान के सूत्र दिए तथा स्त्री की चौसठ कलाएं सिखाई। सुन्दरी ने गणित ज्ञान लोगों को सिखाया साथ ही उसने स्त्रियों को चौसठ कलाएं भी सिखाई।

प्रभु ऋषभदेव ने कर्म के अनुरूप लोगों को वर्गों में विभक्त कर दिया। कृषि और मसि कर्म में निपुण लोगों को वैश्य नाम दिया गया। असि कर्म अर्थात् जनसमाज की रक्षा करने वाले समूह को क्षत्रिय नाम दिया। तथा जो लोग न कृषि कर सकते थे तथा न शस्त्रास्त्र की कला में निपुण थे, उन्हें सेवा—सफाई का कार्य दिया

गया। वे शूद्र कहलाए। ये विभेद मात्र कर्म के आधार पर थे। समाज में ये तीनों वर्ग बराबर सम्मान के अधिकारी थे। शूद्र को निम्न और क्षत्रिय या वैश्य को उच्च नहीं माना जाता था। सभी वर्ग समान और परस्पर एक दूसरे के पूरक थे। सहअस्तित्व और समानता सभी लोगों के हृदय में प्रमुख थी। तब तक ब्राह्मण वर्ग का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

कला प्रशिक्षण –

राजा ऋषभ ने लोगों को स्वावलंबी व कर्मशील बनाने के लिए विविध प्रकार की शिक्षा दी। कला का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने सौ शिल्प और असि.मसि. कृषि रूप कर्मों का सक्रिय ज्ञान कराया। शिल्प ज्ञान में कुंभकार कर्म, पटाकार कर्म, वर्धकी कर्म आदि सिखाये।

इसके साथ ही ऋषभ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को निम्नांकित बहत्तर कलाएं सिखाई–

१.	लेख	–	लिपि कला और लेख विषयक कला
२.	गणित	–	संख्या कला।
३.	रूप	–	निर्माण कला।
४.	नाट्य	–	नृत्य कला।
५.	गीत	–	गायन विज्ञान।
६.	वाद्य	–	वाद्य विज्ञान।
७.	स्वरगत	–	स्वर विज्ञान।
८.	पुष्करगत	–	मृदंग आदि का विज्ञान।
९.	समताल	–	ताल विज्ञान।
१०.	द्युत	–	द्यूत कला।

११. जनवाद	–	विशेष प्रकार की द्युत कला।
१२. पुर काव्य	–	शीघ्र कवित्य।
१३. अष्टापद	–	शतरंज खेलने की कला।
१४. दकमृत्तिका	–	जल शोधन की कला।
१५. अन्नविधि	–	अन्न–संस्कार कला।
१६. पानविधि	–	जल–संस्कार कला।
१७. लयनविधि	–	गृह–निर्माण कला
१८. शयनविधि	–	शय्या–विज्ञान या शयन विज्ञान।
१९. आर्या	–	आर्या –छन्द।
२०. प्रहेलिका	–	पहेली रचने की कला।
२१. मागधिका	–	मागधिका छन्द।
२२. गाथा	–	संस्कृत में इतर भाषाओं में विरुद्ध आर्या छन्द।
२३. श्लोक	–	अनुष्टुप छन्द।
२४. गंधयुक्ति	–	पदार्थ को सुगंधित करने की कला।
२५. मधुसिवथ	–	मोम के प्रयोग की कला।
२६. आभरणविधि	–	अलंकरण बनाने या पहनने की कला।
२७. तरुणीप्रतिकर्म	–	तरुणी को प्रसाधन कला।
२८. स्त्रीलक्षण	–	सामुद्रशास्त्रोक्त–स्त्री लक्षण–विज्ञान।
२९. पुरुषलक्षण	–	सामुद्रशास्त्रोक्त पुरुष लक्षण–विज्ञान।
३०. हयलक्षण	–	सामुद्रशात्रोक्त अश्वलक्षण विज्ञान।
३१. गजलक्षण	–	सामुद्रशास्त्रोक्त गज–लक्षण विज्ञान।
३२. गोलक्षण	–	सामुद्रशास्त्रोक्त गोलक्षण विज्ञान।

३३. कुक्कुटलक्षण – सामुद्रशास्त्रोक्त कुक्कुटलक्षण विज्ञान।
३४. मेषलक्षण – सामुद्रशास्त्रोक्त मेषलक्षण विज्ञान।
३५. चक्रलक्षण – ज्योतिशास्त्रोक्त चक्रलक्षण।
३६. छत्र–लक्षण – ज्योतिशास्त्रोक्त छत्रलक्षण विज्ञान।
३७. वंडलक्षण – ज्योतिशास्त्रोक्त वडलक्षण विज्ञान।
३८. असिलक्षण – ज्योतिषशास्त्रोक्त असिलक्षण विज्ञान।
३९. मणिलक्षण – ज्योतिषशास्त्रोक्त मणि लक्षण विज्ञान।
४०. काकिणी लक्षण – ज्योतिषशास्त्रोक्त काकिणीलक्षण विज्ञान।
४१. चर्मलक्षण – ज्योतिषशास्त्रोक्त चर्मलक्षण विज्ञान।
४२. चन्द्रचरित – चन्द्रगति विज्ञान।
४३. सूर्यचरित – सूर्यचरित विज्ञान।
४४. राहुचरित – राहुचरित विज्ञार्न।
४५. ग्रहचरित – ग्रहचरित विज्ञान।
४६. सौभाकर – सौभाग्य को जानने की कला।
४७. दुर्भाकर – दुर्भाग्य को जानने की कला।
४८. विद्यागत – रोहिणी–प्रज्ञप्ति आदि विद्या–विज्ञान।
४९. मंत्रगत – मंत्र–विज्ञान।
५०. रहस्यगत – गुप्त वस्तुओं को जाने की कला।
५१. सभास – वस्तुओं को प्रत्यक्ष जाने की कला।
५२. चार – ज्योतिष–चक्र का गतिविज्ञान।
५३. प्रतिभार – ग्रहों के प्रतिकूल गति का विज्ञान अथक चिकित्सा–विज्ञान
५४. व्यूह – व्यूह रचने की कला।

५५. प्रतिव्यूह – व्यूह के प्रतिव्यूह रचने की कला।
५६. स्कन्धावारमान – सैन्यसंस्थान–शास्त्र
५७. नगरभान – नगर शास्त्र।
५८. वस्तुमान – वास्तु शास्त्र।
५९. स्कन्धावारनिवेश – सैन्यसंस्थान रचना की कला।
६०. नगरनिवेश – नगर–निर्माण कला।
६१. वस्तुनिवेश – गृह–निर्माण कला।
६२. इषुअस्त्र – दिव्य अस्त्र संबंधी शास्त्र
६३. शस्त्र शिक्षा – खड़गशास्त्र।
६४. अश्वशिक्षा – घोड़े की प्रशिक्षण देने की कला।
६५. हस्तिशिक्षा – हाथी को प्रशिक्षण देने की कला।
६६. धनुर्वेद – धनुष–विद्या।
६७. हिरण्यणक – रजत–सिद्धि की कला।
सुवर्णपाक – स्वर्ण–सिद्धि की कला।
मणिपाक – रत्न–सिद्धि की कला।
धातुपाक – धातुसिद्धि की कला।
६८. बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध
६९. सूत्रखेट – सूत्रक्रीड़ा
नलिकाखेट – नली के द्वारा पाशा डाल कर खेला जाने वाला जुआ
वृत्तखेल – वृत्तक्रीड़ा
७०. पत्रच्छेद्य – निशानेबाजी, पत्रवेध
कटकच्छेद्य – क्रमपूर्वक छेदने की कला

पत्रकच्छेद्य	–	पुस्तक के पत्रों–ताड़पत्र आदि को छेदने की कला
७१. सजीवकरण	–	मृत धातु को सजीव करना–उसको अपने मौलिक रूप में ला देना।
७२. शकुनरुत	–	शकुन शास्त्र

यह विवरण समवायांग सूत्र के अनुसार है। ज्ञाता धर्मकथा, औपपातिक, राजप्रश्नीय व जंबूद्वीप प्रज्ञक्ति की वृत्ति भी बहत्तर कलाओं का कुछ नाम और क्रम भेद के साथ उल्लेख मिलता है।

बाहुबली को प्राणी लक्षण का ज्ञान कराया। ज्येष्ठ पुत्री को दाहिने हाथ से अठारह प्रकार की लिपियां सिखाई, वे इस प्रकार हैं–

१.	ब्राह्मी	२.	यवनानी
३.	दोसउरिया	४.	खरोष्ट्रिका
५.	खरशाहिका	६.	प्रभाराजिका
७.	उच्चत्तरिका	८.	अक्षरपृष्टिका
९.	भोगवतिका	१०.	वैनतिकी
११.	निन्हविका	१२.	अंकलिपि
१३.	गणितलिपि	१४.	गंधर्वलिपि
१५.	आदर्शलिपि	१६.	माहेश्वरी
१७.	द्राविड़ी	१८.	पोलिंदी।

दूसरी पुत्री सुंदरी को बायें हाथ से गणित का ज्ञान करवाया, साथ ही राजा ऋषभ ने स्त्रियों की चौसठ कलाओं का भी ज्ञान दिया, वे इस प्रकार हैं–

१.	नृत्य–कला	२.	औचित्य	३.	चित्र–कला
४.	वाद्य–कला	५.	मंत्र	६.	तन्त्र
७.	ज्ञान	८.	विज्ञान	९.	दम्भ

१०. जलस्तम्भ	११. गीतमान	१२. तालमान
१३. मेघवृष्टि	१४. फलाकृष्टि	१५. आराम–रोपण
१६. आकार गोपन	१७. धर्म विचार	१८. शकुनसार
१९. क्रियाकल्प	२०. संस्कृत जल्प	२१. प्रसादनीति
२२. धर्मनीति	२३. वर्णिकावृद्धि	२४. सुवर्णसिद्धि
२५. सुरभितैलकर	२६. लीलासंचरण	२७. हय–गजपरीक्षण
२८. पुरुष–स्त्रीलक्षण		२९. हेमरत्न भेद
३०. अष्टादश लिपिपरीच्छेद		
३१. तत्काल बुद्धि	३२. वस्तु सिद्धि	३३. काम विक्रिया
३४. वैद्यक क्रिया	३५. कुम्भ भ्रम	३६. सारिश्रम
३७. अंजनयोग	३८. चूर्णयोग	३९. हस्तलाघव
४०. वचन–पाटव	४१. भोज्य विधि	४२. वाणित्य विधि
४३. मुखमण्डन	४४. शालि खण्डन	४५. कथाकथन
४६. पुष्प ग्रंथन	४७. वक्रोक्ति	४८. काव्यशक्ति
४९. स्फारविधिवेष	५०. सर्वभाषा	५१. अभिधान ज्ञान
५२. भूषण–परिधान	५३. भृत्योपचार	५४. गृहाचार
५५. व्याकरण	५६. परनिराकरण	५७. रन्धन
५८. केशबन्धन	५९. वीणानाद	६०. वितण्डावाद
६१. अंक विचा	६२. लोक व्यवहार	६३. अन्त्साक्षरिका
६४. प्रश्न प्रहेलिका		

अभिनिष्क्रमण– प्रभु ऋषभदेव विश्व को सामाजिक और राजनैतिक सुव्यवस्थाएं दे चुके थे। उनके हृदय में अध्यात्म से साक्षात्कार करके उसके प्रचार व प्रसार का मंगलमय संकल्प जगा। उसी समय पांचवें देवलोक के नौ लोकान्तिक देव प्रभु के

समक्ष प्रगट हुए और उन्हें प्रणाम करते हुए बोले— "आपका संकल्प मंगलमय है प्रभो! आपका वैश्विक दायित्व पूर्ण हो चुका है। अब आप धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करके मनुष्य के कल्याण का अमरमार्ग प्रशस्त कीजिए।"

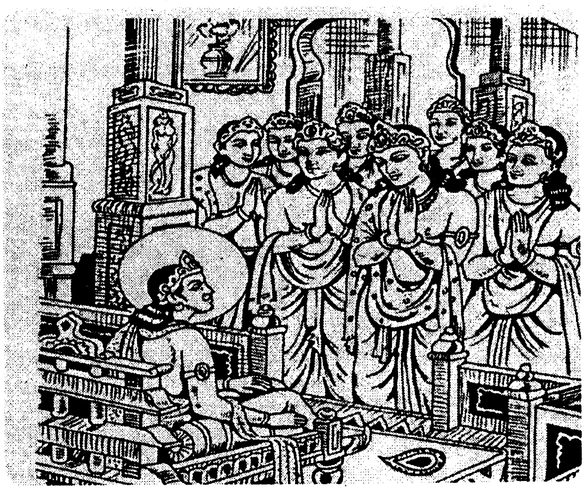

स्मित मुस्कान से ऋषभदेव ने देवों की प्रार्थना स्वीकार की। देव अपने विमानों (निवास–स्थानों) को लौट गए। ऋषभदेव ने अपने राज्य को सौ खण्डों में विभक्त किया। उन्होंने अयोध्या का राज्य भरत को दिया तथा तक्षशिला का राज्य बाहुबलि को दिया। शेष अठानवे पुत्रों को भी बराबर के राज्य दिए गए। तत्पश्चात् प्रभु

ने वर्षीदान दिया। एक वर्ष तक उन्होंने अरबों स्वर्णमुद्राएँ बांटीं। फिर चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन प्रभु ऋषभदेव ने पंचमुष्टी लुंचन करके दीक्षा धारण की।

ऋषभदेव अपने युग के एकमात्र मान्य पुरुष थे। वे लोगों के हृदयों में उतर चुके थे। लोग उन्हें अपना संरक्षक और जनक मानते थे। इसलिए उनके अभिनिष्क्रमण के साथ ही चार हजार लोगों ने उनका अनुकरण करते हुए दीक्षा धारण की।

प्रभु ऋषभदेव मौनावलम्बी बनकर विचरण करने लगे। कुछ दिनों तक उनके साथ दीक्षित हुए चार हजार मुनि उनका अनुगमन करते रहे। लेकिन साध्वाचार की मर्यादाओं से अनभिज्ञ होने के कारण श्रमण–मुनि क्षुधा–तृषा से व्यथित होने लगे। वे प्रभु से पूछते–''बाबा! हम क्या खाएं?'' लेकिन प्रभु कोई उत्तर न देते। क्षुधा–तृषा से पीड़ित उन चार हजार मुनियों ने वन–मार्ग ग्रहण कर लिया। वे कन्द–मूल–फल का भोजन करते हुए अपने–अपने ढंग से स्वतंत्र साधना करने लगे।

महादान– धर्म और धर्म–नियमों से वह युग एकदम अपरिचित था। प्रभु ऋषभदेव भिक्षा के लिए द्वार–द्वार पर जाते, लेकिन लोग दान विधि से अनभिज्ञ थे। लोग सोचते बाबा को कुछ अमूल्य भेंट देनी चाहिए। वे उन्हें सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा स्वर्णमुद्राएँ भेंट करते लेकिन भोजन देने की किसी को नहीं सूझती। प्रभु मौन भाव से उनकी भेंट अस्वीकार करके लौट जाते।

यह क्रम एक वर्ष तक चलता रहा। निरन्तर एक वर्ष तक प्रभु निराहार–निर्जल रहे।

प्रभु ऋषभ देव के पौत्र तथा बाहुबलि के पुत्र सोमप्रभ हस्तिनापुर

में राज्य करते थे। उनके पुत्र को नाम था—श्रेयांसकुमार। एक रात्री में श्रेयांसकुमार ने एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि सुमेरू पर्वत काला पड़ गया है और वह उस दुग्ध से सींच रहे हैं। उनके सींचने से सुमेरू पुनः स्वर्ण के समान उज्जवल हो उठा हो।

दूसरे दिन श्रेयांसकुमार अपने महल के झरोखे में बैठे हुए रात्री में देखे स्वप्न पर चिन्तन कर रहे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि अपने महल की ओर मंथर गति से बढ़ते हुए अपने परदादा प्रभु ऋषभदेव पर पड़ी। वे अपलक दृष्टि से उन्हें निहारने लगे। उसी समय उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्वजन्म की घटनाएं चलचित्र की भांति उनके नेत्रों के समक्ष घूम गई। उन्होंने जान लिया कि प्रभु ऋषभदेव एक वर्ष से निराहार हैं। शुद्ध कल्प्य आहार के अभाव में प्रभु की देह शिथिल हो गई है। श्रेयांस कुमार तत्काल उठे और प्रभु के समक्ष पहुंच गए। प्रभु को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर श्रेयांस कुमार ने प्रार्थना की—"प्रभो! पधारिए । प्रासुक इक्षुरस ग्रहण कीजिए। यह आपके सर्वथा अनुकूल है।"

प्रभु ऋषभदेव ने ज्ञानमय नेत्रों से देखा। उन्हें निश्चय हो गया कि इक्षुरस शुद्ध और प्रासुक है। उन्होंने अपने दोनों हाथों का अंजलिपुट बनाकर इक्षुरस ग्रहण किया। 'अहो दानं' की देव-ध्वनियों से नभमण्डल गूंज उठा। देवों ने पंचद्रव्य प्रगट किए। प्रभु ऋषभदेव प्रथम भिक्षुक हुए तथा श्रेयांसकुमार प्रथम दान-दाता बने।

वह वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन था। उस दिन को अक्षय तृतीया पर्व का गौरव हासिल हुआ। तब से आज तक उस दिन को समस्त जैन समाज में स्तंभ दिवस, पर्व दिवस के रूप में मनाया जाता है।

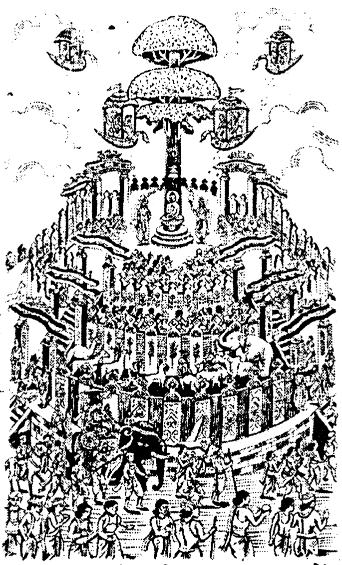

प्रभु ऋषभदेव के समवसरण में भव्यातिभव्य दर्शन

केवलज्ञान– प्रभु ऋषभदेव एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। उन्होंने विभिन्न प्रकार के तपों के माध्यम से अनन्त व अनादि से संचित कर्म–राशि को समूल निर्मूल कर दिया। मुरिमताल नगर के बाहर वट वृक्ष के नीचे, तेले की तपस्या की आराधना करते हुए फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन प्रभात में प्रभु श्री ऋषभदेव ने शुक्ल ध्यान की पराकाष्ठाओं में विचरण करते हुए केवलज्ञान, केवलदर्शन की ज्योति अपनी आत्मा में प्रज़्ज़्वलित की।

दिग्दिगन्त आलोकमय हो उठे। चौंसठ इन्द्रों, असंख्य देवताओं और अगणित मनुष्यों ने मिलकर प्रभु का कैवल्य महोत्सव मनाया। देवताओं ने समवसरण की रचना की।

माता मरुदेवी और महाराज भरत को प्रभु के कैवल्य का समाचार प्राप्त हुआ। माता मरुदेवी का वात्सल्यपूर्ण हृदय हर्षाप्लावित हो उठा। महाराज भरत ने भी अपने सभी कार्यक्रम स्थगित करके प्रभु के कैवल्य महोत्सव में सम्मिलित लेने का संकल्प कर लिया।

प्रभु ऋषभदेव असंख्य देवी–देवताओं और मानवों के मध्यभाग में उच्चासन पर विराजित थे। देवकृत समवसरण की रत्नमय

कान्ति से आलोक बिखर रहा था। माता मरुदेवी ने हाथी पर बैठे हुए ही दूर से अपने पुत्र ऋषभदेव की यह महाऋद्धि देखी। उसका तन–मन रोमांचित हो उठा। उसने विचार किया– मेरी चिन्ताएँ तो ऋषभ के लिए निर्मूल थीं। वह तो देवपूजित देवाधिदेव है। मैं अपने मोह के कारण ही व्यर्थ चिन्तित होती रही। मोह ही वास्तव में आत्मा को दुःखी करने वाला है।

"मरुदेवी भगवई सिद्धा"

सिद्धगति को प्राप्त मरुदेवी माता के दर्शन करते भरतचक्री

माता मरुदेवी आत्मचिन्तन में निमग्न थी। उसके भाव शुद्ध से शुद्धतर होते चले गए। और उसे हाथी के हौदे पर बैठे हुए ही केवलज्ञान हो गया। अन्तिम श्वास में सर्वज्ञता से साक्षात्कार करके उसने देह का परित्याग कर दिया। प्रभु ऋषभदेव ने उद्घोषणा की–

मरुदेवा भगवई सिद्धा।

प्रभु ऋषभदेव ने अपना प्रथम वचन दिया। इस अवसर्पिणी काल के मनुष्य ने प्रथम बार धर्म को अनुभव किया। हजारों लोगों ने मुनि–जीवन स्वीकार किया। हजारों स्त्रियाँ साध्वी बनीं। महाराज

भरत के ज्येष्ठपुत्र ऋषभसेन प्रभु के प्रथम शिष्य बने तथा ब्राह्मी प्रथम श्रमणी बनी। श्रावक व श्राविका संघ की स्थापना भी हुई।

प्रभु के अठानवें पुत्रों की प्रवज्या– विश्व की समुचित व्यवस्था के लिए महाराज भरत ने समग्र विश्व समुदाय को एक शासन सूत्र में बांधने का विचार किया। वे दिग्विजय के लिए निकले। इसमें उन्हें साठ हजार वर्ष लगे। भरत अपनी राजधानी लौटे। सुदर्शन चक्र आयुधशाला के द्वार पर आकर ठहर गया।

सेनापति ने भरत को सुदर्शन चक्र की आयुधशाला के द्वार पर अवस्थिति की सूचना दी। भरत विचारमग्न हो गए। वे जानते थे कि जब तक एक भी राजा उनकी आधीनता स्वीकार न करेगा, तब तक सुदर्शन चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं करेगा। सेनापति ने कहा–"महाराज! पूरे विश्व ने आपकी आधीनता स्वीकार कर ली है, परन्तु आपके निन्यानवें भाई अभी भी स्वतंत्र प्रदेशों के शासक हैं।" भरत को बात जंच गई। उन्होंने अपने सभी भाइयों को उनकी अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। ऐसा न करने पर युद्ध की चेतावनी दी।

बाहुबली के अतिरिक्त शेष अठानवे भाई भरत के प्रबल पराक्रम का सामना नहीं कर सकते थे। वे भरत की पराधीनता भी स्वीकार करना नहीं चाहते थे। वे निराश होकर अपने पिता प्रभु ऋषभदेव के चरणों में पहुंचे और बोले–"पूज्य पितृदेव! आपने हमें स्वतंत्र राज्य दिए थे, परन्तु भाई भरत हमें पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ना चाहते हैं। हम क्या करें ? हमें मार्गबोध दो।"

भगवान् ऋषभदेव ने कहा–"भव्यात्माओं! बाहर के साम्राज्य सदैव अस्थिर रहते हैं। छिन जना ही इनकी नियति है। इन राज्यों की तो मैं रक्षा नहीं कर सकता हूँ। हाँ, तुम्हें ऐसा साम्राज्य अवश्य

दे सकता हूँ जो कभी नहीं छिनेगा। उस साम्राज्य को कोई नहीं छीन सकेगा।''

प्रभु ऋषभदेव ने अठानवें पुत्रों को उपदेश दिया। उन्होंने उन्हें उनके आत्मवैभवसम्पन्न साम्राज्यों का ज्ञान प्रदान किया। सभी अठानवें भाइयों ने प्रभु का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। उग्र साधना साधकर सभी ने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया और एक ऐसा साम्राज्य पा लिया जो सदा–सर्वदा के लिए निष्कण्टक है, नहीं छिनने वाला है।

दो भाइयों का युद्ध– बाहुबली को भी भरत का संदेश मिला कि वे उनकी अधीनता स्वीकार कर लें। बाहुबली प्रकृष्ट स्वाभिमानी तथा प्रचण्ड आ बलशाली थे। उन्होंने संदेशवाहक दूत से कहा– ''दूत! अपने महाराज भरत को कह दो कि बाहुबली अपने बड़े भाई भरत का तो सम्मान करता है और उनके कदमों में झुकने को तैयार है, परन्तु सम्राट भरत का मुझे कोई भय नहीं है। मैं उनकी आधीनता कदापि स्वीकार नहीं करूंगा।''

भरत के पास बाहुबली का संदेश पहुंचा। भरत विक्षुब्ध हो उठे। विशाल सेना के साथ उन्होंने तक्षशिला की ओर प्रस्थान कर दिया। सूचना पाकर बाहुबली भी अपनी सेना के साथ युद्ध के मैदान में आ डटे।

भयानक नरसंहार संभावित था। मध्यस्थों ने बीच–बचाव करते हुए दोनों भाइयों को परस्पर शक्ति–परीक्षण के लिए कहा। भरत और बाहुबली ने इस सुझाव को मान लिया।

ध्वनियुद्ध, दृष्टियुद्ध, मुष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध, तथा दण्डयुद्ध– ये पांच प्रकार के युद्ध भरत और बाहुबली के मध्य लड़े गए। इन पांचों युद्धों में बाहुबली ने भरत को पछाड़ दिया। भरत अपनी पराजय से विक्षुब्ध हो उठे। औचित्य–अनौचित्य का विचार किए

बिना उन्होंने बाहुबली पर सुदर्शनचक्र चला दिया।

रणांगण वीभत्स हो उठा। सुदर्शनचक्र अमोघ अस्त्र होता है। बाहुबली के सैनिकों ने सुदर्शन चक्र को निष्प्रभावी बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किए लेकिन वे असफल रहे। सुदर्शनचक्र बाहुबली के पास पहुंचा, लेकिन वह भी उनका कुछ न बिगाड़ सका। यह प्राकृतिक नियम है कि पारिवारिक व्यक्ति और चरमशरीरी पुरुष को सुदर्शन चक्र छू नहीं सकता। बाहुबली की परिक्रमा करके चक्र लौट आया।

बाहुबली की सेना में विजयी उल्लास छा गया। भरत की दुष्टभावना ने बाहुबली को क्रोधित कर दिया। उन्होंने भरत को मारने के लिए अपनी मुट्ठी तान ली और उनकी ओर दौड़ चले। इस दृश्य से भरत की सेना आतंकित हो उठी। प्राकृतिक नियम टूटने के निकट थे। उसी समय देवों ने मध्यस्थता करते हुए बाहुबली को रोका और कहा—''वीरवर! तुच्छ राज्य के लिए आप अपने बड़े भाई को मारने पर उतारू हो गए हैं। आप जैसे धीर–वीर और प्रामाणिक पुरुष यदि ऐसा करेंगे तो साधारण जनता का क्या होगा। भरत को क्षमा कर दो और प्रकृति के नियमों की रक्षा करो।''

बाहुबली रुक गए। परन्तु शूरवीरों के वार कदापि निष्फल नहीं जाते। उन्होंने अपनी तनी हुई मुट्ठी को अपने सिर पर रखा और केश–लुंचन करने लगे। युद्ध के मैदान में ही वे महाबली योद्धा से महामुनि बन गए। मुनि बनकर बाहुबली जैसे ही प्रभु ऋषभदेव के पास जाने को उद्यत हुए तो तत्काल उन्हें विचार आया—''प्रभु ऋषभ के पास तो मेरे अनुज पहले से ही दीक्षित है। यदि मैं वहां जाऊंगा तो मुझे उन्हें वन्दन करना पड़ेगा। इससे मेरी प्रतिष्ठा गिर

जाएगी। मुझे केवलज्ञान साधकर ही प्रभु के पास जाना चाहिए जिससे वन्दनादि का झंझट ही मिट जाए।" ऐसा विचार करके बाहुबली वहीं पर अडोल समाधि में खड़े हो गए।

अहम् की सूक्ष्मरेखा उनके हृदय में शेष थी। केवलज्ञान और बाहुबली की आत्मा के मध्य वह सूक्ष्म-सी रेखा महादीवार बन गई। बाहुबली निरन्तर एक वर्ष तक अविचल समाधि में खड़े रहे। पक्षियों ने उनकी देह में घोंसले बना लिए थे। जंगली जानवर उनकी देह को ठूंठ समझकर अपनी देह खुजलाते थे। न अन्न, न जल! अटूट समाधि! फिर भी कैवल्य की ज्योत न जली।

बाहुबली की दशा को प्रभु ऋषभदेव अपने कैवल्य के आलोक में निहार रहे थे। उन्होंने अपनी पुत्रियों—साध्वी ब्राह्मी और साध्वी सुन्दरी को बाहुबली को प्रतिबोध देने भेजा। दोनों साध्वियां बाहुबली के पास पहुंचीं और बोलीं—भाई! अहम् के हस्ती से नीचे उतरो। ऐसा किए बिना तुम्हें केवलज्ञान नहीं होगा।"

बहनों की बात सुनकर बाहुबली की विचारधारा मुड़ गई। उन्होंने चिन्तन किया—'सभी को परास्त करके भी मैं मेरे सूक्ष्म अहम् से परास्त हो गया हूँ। मेरे छोटे भाई भले ही आयु में मुझसे छोटे हैं परन्तु वास्तविक आयु तो संयम की आयु होती है, और इस दृष्टि से वे मुझसे ज्येष्ठ हैं। ज्येष्ठ को प्रणाम का अधिकार है। मैं उन्हें प्रणाम करूँगा।'

ऐसा चिन्तन करते ही बाहुबली का अहम् गल गया। उन्होंने प्रस्थान हेतु कदम उठाया और उसी पल उन्हें केवलज्ञान हो गया। देवदुंदुभियां बजने लगीं। बाहुबली ने अपनी मंजिल को पा लिया था।

भरत को केवल ज्ञान– भरत चक्रवर्ती बन गए। लेकिन उन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति न हुई। राज्य के लिए उन्हें अपने भाइयों को खोना पड़ा, इसके लिए उन्हें वे सदैव उदास मन बने रहे। वे राज्य तो करते रहे परन्तु उनका मन कभी उसमें रमा नहीं।

एक दिन शीशमहल में श्रृंगार करते हुए देह और संसार की अनित्य स्थिति पर विचार करते हुए उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया।

शीशमहल में कैवल्य की साधना यह अपने आप में एक अकेली घटना है। केवलज्ञान का सम्बन्ध मन के परिवर्तन पर आधृत है, दैहिक परिवर्तनों पर नहीं।

निर्वाण– भगवान् ऋषभदेव सुदीर्घ काल तक इस वसुन्धरा पर धर्म की पतितपावनी गंगा बहाते हुए विचरण करते रहे। लाखों–करोड़ों मनुष्यों ने इस गंगा में गोता लगाकर परमपद प्राप्त किया।

आयुष्य–क्षय को निकट देखकर प्रभु ऋषभदेव दस हजार श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर पधारे। 6 दिन के अनशन सहित प्रभु ने समस्त कर्मों को क्षय करके मोक्ष पद प्राप्त किया। वे नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा और अरिहंत से सिद्ध हो गए।

पुनः 64 इन्द्रों, असंख्य देवताओं और महाराज भरत सहित अगणित मानवों ने मिलकर प्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाया। आदि तीर्थंकर, आदि जिनेश और आदि महामानव प्रभु ऋषभ को वन्दन! अभिवन्दन!

卐

अन्य धर्म एवं संप्रदायों में

''भगवान ऋषभदेव''

भारत के तीन प्रमुख धर्म है–जैन, बौद्ध एवं वैदिक (हिन्दू धर्म) इन सभी की मान्यता है कि संसार में धर्म का आदि स्रोत करोड़ों अरबों वर्ष पुराना है। जैनधर्म के अनुसार वर्तमान काल प्रवाह में इस पृथ्वी पर भगवान ऋषभदेव में सर्वप्रथम धर्म का प्रसार किया। न केवल धर्म का, किन्तु मनुष्य को कृषि, व्यवसाय, कला, शिल्प, राजनीति व राज व्यवस्था की शिक्षा सर्वप्रथम ऋषभदेव ने दी थी। वे संसार के प्रथम राजा भी थे और प्रथम श्रमण (सन्यासी) एवं धर्म प्रवर्तक तीर्थंकर भी हुए। इसलिए उन्हें आदिनाथ अथवा प्रथम तीर्थंकर नाम से जाना जाता है। ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती सम्राट हुए। जिनके नाम से हमारे देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भगवान ऋषभदेव लोक नायक भी थे और धर्म नायक थे। उन्होंने मानव समाज की उन्नति के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ की ओर प्रवृत्त किया तथा फिर ओर आत्मशान्ति के लिए निवृत्ति का मार्ग भी दिखाया संसार में सुचारु समाज व्यवस्था तथा राज व्यवस्था स्थापित करके उन्होंने अन्त में संयम एवं त्याग मार्ग स्वीकार कर भोग और त्याग का संतुलित जीवन दर्शन सिखाया।

भगवान ऋषभदेव का जीवन चरित्र जैन शास्त्रों के अतिरिक्त ऋग्वेद एवं श्रीमद् भागवत पुराण आदि में भी आता। इतिहासकारों ने भगवान् ऋषभदेव तथा भगवान शिवशंकर में अनेक विचित्र समानताएं देखकर अनुमान लगाया है कि कहीं एक ही महापुरुष के ही दो स्वरूप तो नहीं है ? चूँकि दोनों ही महापुरुषों का जीवन–

लक्ष्य तो लोक कल्याण रहा है।

प्रभु ऋषभदेव की शाश्वत –वाणी

- जिस सम्पत्ति और सत्ता के लिए लोग लड़ मरते है; उसका वास्तविक मूल्य वे नहीं जानते। एक हीरे का वास्तविक मूल्य उतना ही है, जितना किसी मार्ग पर पड़े पत्थर का। संपत्ति और सत्ता अमानवीय भाव और वैमनस्य पैदा करती है तथा प्राण तक ले लेती है। परिग्रह हिंसा का जनक है। अपरिग्रह अहिंसा का मूल है इसलिए उससे मैत्री, सद्भाव और शांति प्राप्त होती है।
- अहंकार मनुष्य को सहन नहीं होने देता। मानवता और सहजता, इन दोनों का ही वह शत्रु है। स्वयं को श्रेष्ठ समझने की कोशिश वस्तुतः स्वयं को हीन मानने की भावना से प्रारम्भ होती है। आवश्यकता सहज होने की है। सहजता अर्थात् स्वय् की स्वय् में स्थिति ही सम्यक् चारित्र है।
- ज्ञान के अभाव में पारस भी पत्थर समान है और ज्ञान के प्रकाश में पत्थर भी पारस बन जाता है। आत्मज्ञान अर्थात् स्वयं का ज्ञान मनुष्य की उन्नति के और सफलता के लिये अनिवार्य है। अपने जीवन और सद्गुणों के विकास के लिए ज्ञान के द्वार पर दस्तक दो।

संबोधि प्राप्त करो क्यों नहीं सुबद्ध होते हो।

वैदिक परम्परा में माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन आदिदेव का शिवलिंग के रूप में उद्भव होना माना गया है। भगवान आदिनाथ के शिव–पद प्राप्ति का इससे साम्य प्रतीत होता है। यह संभव है कि भगवान ऋषभदेव की चिता पर जो स्तूप निर्मित हुआ वही आगे

चलकर स्तूपकार चिह्न शिवलिंग के रूप में लोक में प्रचलित हो गया हो। जैन परम्परा की तरह वैदिक परम्परा के साहित्य में भी ऋषभदेव का विस्तृत परिचय उपलब्ध है। बौद्ध साहित्य में भी भगवान ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है। पुराणों में ऋषभ के बारे में लिखा है कि ब्रह्माजी ने अपने से उत्पन्न अपने ही स्वरूप स्वायंभुव को प्रथम मनु बनाया। स्वायंभुव से प्रियव्रत, प्रियव्रत से आग्नीङ्फ आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। आग्नीघ्र से नाभि और नाभि से ऋषभ उत्पन्न हुए। नाभि की प्रिया मरुदेवी की कुक्षि से अतिशय कांतिमान पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम ऋषभ रखा गया। ऋषभदेव ने धर्मपूर्वक राज्य शासन किया तथा विविध यज्ञों का अनुष्ठान किया। फिर अपने पुत्र भरत को राज्य सौंपकर तपस्या के लिए पुलहाश्रम चले गए। जब से ऋषभदेव ने अपना राज्य भरत को दिया तब से यह हिमवर्त लोक में भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीमद्‌भागवत् को विष्णु का अंशावतार माना गया है। उसके अनुसार भगवान नाभि का प्रेम सम्पादन करने के लिए महारानी मरुदेवी के गर्भ से सन्यासी वातरशना–श्रमणों के धर्म को प्रकट करने के लिए शुद्ध समन्वय विग्रह से प्रकट हुए। ऋषभदेव के शरीर में जन्म से ही वज्र, अंकुश आदि विष्णु के चिह्न थे। उनके सुन्दर शरीर, विपुल तेज, बल, ऐश्वर्य, पराक्रम और सुखीरता के कारण महाराज नाभि ने उन्हें ऋषभ (श्रेष्ठ) नाम से पुकारा।

श्रीमद्‌भागवत् में ऋषभदेव को साक्षात् ईश्वर कहा है। इन्द्र द्वारा दी गई जयन्ती कन्या से उनके पाणिग्रहण और उसके गर्भ से उनके ही समान सौ पुत्रों के उत्पन्न होने का उल्लेख है। ब्रह्मावर्त पुराण में लिखा है कि उन्होंने अपने पुत्रों को आत्म ज्ञान की शिक्षा

दी और फिर स्वयं उन्होंने अवद्यूतवृति स्वीकार कर ली। श्रीमद्भागवत् में उनके उपदेशों का सार इस प्रकार है–"मेरे इस अवतार–शरीर का रहस्य साधारण जनों के लिये बुद्धिगम्य नहीं है। शुद्ध सत्व ही मेरा हृदय है। और उसी में धर्म की स्थिति है। मैंने अधर्म को अपने से बहुत दूर पीछे ढकेल दिया है, इसलिये सत्पुरुष मुझे ऋषभ कहते हैं। पुत्रों। तुम सम्पूर्ण चराचर भूतों को मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से पद पद पर उनकी सेवा करो, यही मेरी सच्ची पूजा है।"

श्रीमद्भागवत में ऐसा भी उल्लेख है ऋषभदेव ने पृथ्वी का पालन करने के लिए भरत को राजगद्दी पर बिठाया। स्वयं धर्म की शिक्षा देने के लिए विरक्त हो गए। केवल शरीर मात्र का परिग्रह रखा और सब कुछ घर पर रहते ही छोड़ दिया। वे तपस्या के कारण सुखकर काँटा हो गए थे और उनके शरीर की शिरायें–धमनियाँ दिखाई देंने लगी थी। शिवपुराण में शिव का तीर्थंकर ऋषभदेव के रूप में अवतार लेने का उल्लेख है।

बौद्ध साहित्य में लिखा है कि भारत के आदि सम्राटों में नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभपुत्र भरत की गणना की गई है। वे व्रतपालन में दृढ़ थे। उन्होंने हिमवंत गिरि हिमालय पर सिद्धि प्राप्त की। धम्मपद में ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ वीर कहा है। ऋषभदेव को आदिनाथ के अलावा और भी कई नामों से जाना जाता है जैसे हिरण्यगर्भ, प्रजापति, लोकेश, चतुरानन, नाभिज, स्रष्टा, स्वयंभू आदि। ये सभी नाम पुराणों में प्रसिद्ध देव ब्रह्मा के पर्याय है। इसलिए कहीं–कहीं इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि ब्रह्मा और भगवान ऋषभदेव अलग नहीं, बल्कि एक ही है।

भगवान ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व का जिस श्रद्धा के साथ जैन धर्म के आगम–ग्रंथों में दिग्दर्शन कराया गया है, ठीक उसी प्रकार की अगाध प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ भारत के प्रायः सभी प्राचीन धर्मों के पवित्र ग्रंथों में उनके लोक–व्यापी वर्चस्व का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने मानव–समाज को इस लोक के साथ–साथ परलोक को भी सुखद और सुन्दर बनाने के जो मार्ग बताए, वे न केवल मानवमात्र, अपितु प्राणिमात्र के लिए वरदान सिद्ध हुए। उनके द्वारा आविर्भूत लोकनीति और राजनीति जिस प्रकार किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं, अपितु समष्टि के हित के लिए भी, उसी प्रकार उनके द्वारा स्थापित धर्म–मार्ग भी समष्टि के कल्याण के लिए था। यही कारण है कि भारत के प्राचीन धर्म ग्रंथों में भगवान ऋषभदेव को धाता, भाग्य–विधाता और भगवान आदि संबोधनों से अभिहित किया गया है।

ऋषभदेव के समय के बारे में श्री रामधारी सिंह दिनकर का कथन है–"इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अयुक्तियुक्त नहीं है कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेदपूर्व है। आजकल, मार्च 1962, पृष्ठ 8।

डॉ. जिम्भर लिखते है– "पहले तीर्थंकर ऋषभ हुए, जिन्होंने मानव को सभ्यता का पाठ पढ़ाया।" –"अतः जैन धर्म भगवान ऋषभ के काल से चला आ रहा है।" भगवान ऋषभदेव

और सम्राट भरत का उल्लेख वेद के मन्त्रों, जैनेतर पुराणों, उपनिषदों आदि में भी मिलता है। भारत के प्राचीन धर्मग्रंथों वेदों, वैष्णव भागवत, शैव प्रभृति विभिन्न आम्नायों के उपरिवर्णित 10 पुराणों, मनुस्मृति एवं बौद्ध ग्रंथ आर्य मंजुश्री आदि के गरिमापूर्ण उल्लेखों पर चिंतन–मनन से सहज ही विदित हो जाता है कि युगादि की सम्पूर्ण मानवता ने भगवान ऋषभदेव को अपने सार्वभौम लोकनायक, सार्वभौम धर्मनायक और सर्वोच्च सार्वभौम हृदयसम्राट के रूप में स्वीकार किया था। भगवान ऋषभदेव द्वारा स्थापित की गयी नीति लोकनीति के नाम से एवं प्रकट किया गया धर्ममार्ग विश्वधर्म अथवा ''शाश्वत धर्म के नाम से त्रैलोक्य में विख्यात हुए, जहाँ विश्वधर्म से तात्पर्य सब प्रकार के विशेषणों से रहित केवल **''धर्म''** ही था।

एकान्तर तपधारी सत्पुरुषों का योग बल इस सृष्टि का मंगल और कल्याण करें।

अहिंसा, संयम और तप रूप उत्कृष्ट धर्म जिस आत्मा में निवास करता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। तप बिना जल और साबुन का अंतरंग स्नान है। कर्म कालिमा से काली बनी हुई आत्मा तप–ज्वाला से स्वर्णसम चमकने लगती है। मोक्ष के चार द्वार है **सम्यक ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप**–धन्य है तप और धन्य है तपस्वी।

वर्षीतप का किया है *Selection*

तन–मन का दिया *Donation*

प्रभु आदिनाथ से जोड़ा है *Connection*

तपस्वी को देते हैं– *Congratulation*

卐 श्री भक्तामर स्तोत्र भावानुवाद 卐

हे नाथ! भक्ति युत् इन्द्र देव जब, चरणों में शीश नमाते हैं,
उनके मुकुटों में लगे मणि–रत्न भी, दिव्य प्रकाश को पाते हैं।
हृदय मणि में भक्ति प्रेम जब, अर्पणता शुचि भाव धरे,
अज्ञान मोहाताम नाश खास हो, पाप ताप संताप हरे।।

आदिपुरुष हो आदि जिनेश्वर, कर्मभूमि के आदि कर्त्ता,
चरण–युग में प्रणाम श्रद्धा–युत्, मिथ्यामोह तिमिर हर्त्ता।
आलम्बन एक मात्र आपका, भव–समुद्र से तिरने को,
नौका भी हो मात्र आप ही, भवजल पार उतरने को।। 1 ।।

सकल शास्त्र विज्ञाता होते, तत्वबोध भी पूर्ण जिन्हें,
बुद्धि के भंडार चतुर भी, सुरलोक नाथ शकेन्द्र नमें
तीनलोक का चित्त हरण हो, ऐसी स्तुतियाँ भाव धरि,
महाआश्चर्य मुझ पामर ने भी, प्रथम जिनेश्वर स्तुति वरि।। 2 ।।

देवताओं से पूजित सिंहासन, महिमा अपरंपार हैं,
मैं बुद्धिहीन निर्लज्जमूढ़ हूँ, स्तुति गाता से ही निस्तार है।
जल में स्थित चंद्रबिंब को, सिवा बालक के कौन ग्रहे,
छद्मस्थ दशा में तव–गुण–गायन, यह भी बाल प्रयास रहे।।3 ।।

गुणनिधि प्रभु गुण आपके, चंद्रकांति समनिर्मल है,
सुरगुरू सम बुद्धि भले हो, गुणगान करना नहीं सरल है।
प्रलयकाल की पवन में जब, मच्छ कच्छादि उद्धत हो,
भुजबल से तब कौन तिरेगा, जब समुद्र ही क्षुभित हो।। 4 ।।

हे मुनिश! मैं शक्तिहीन हूँ, भक्ति–प्रेम, उर छलक रहा,
स्तवन करुं श्रद्धाबल से, शक्तिबल चाहे अटक रहा।
सिंह के मुंह में देख शिशु को, मृगी मृगेन्द्र, से जुझ पड़े,
निज शक्ति को बिना विचारे, भाव स्तुति के उमड़ पड़े।। 5।।

अल्पज्ञानी हूँ, ज्ञानी जनों में, मैं हँसी का पात्र अहो,
तवभक्ति ही वाचाल बनाती, मौन रहूं फिर कैसे कहो?
वसंतऋतु में ही कोयल जब, मीठा–राग सुनाती है,
निश्चय ही तब आम्रमंजरी, एक मात्र कारण दर्शाती है।। 6।।

महिमाशाली स्तवन आपका, जन्म मरण से मुक्त करे,
देहधारियों के क्षण भर में, पाप–ताप संताप हरे।
समस्त लोक आच्छादित जिससे, भ्रमर समान जो काले है,
रात्रि के सघन अंधेरे में भी, रवि–किरणों से होवे उजाला है।। 7।।

अचिन्त्य प्रभावी भगवन मेरे, स्तुति आपकी माता हूँ,
अल्पबुद्धि अज्ञानी फिर भी, भक्ति के वश हो मचलता हूँ।
ओसबिन्दु जब कमल–पत्र पर, मोती की संज्ञा पाता हैं,
ऐसे ही यह स्तवन हमेशा, सज्जनों के मन को हरता है।। 8।।

समस्त दोषों का करे निवारण, ऐसी स्तुति का कहना ही क्या?
नाम स्मरण भी पाप हरे, यही आपकी भाव–दया।
सहस्ररश्मि सूर्य प्रभाज्यों, विकसित करती कमलों को,
भव्यजन भी भवजल में रहकर, तव कृपा–किरण से विकसित हो।।9।।

त्रिभुवन भूषण! भूतनाथ! हो, फिर आश्चर्य की बात ही क्या ?
जो आपको ध्याता है, पा जाता जीवन फिर से नया।
भूतल पर भी देखा मैंने, सेवक स्वामी से बल पाता है,
वह स्वामी ही क्या सेवक को, जो नहीं निजतुल्य बनाता है।। 10।।

हे नाथ! आपको देखा जिसने, निर्निमेष दृष्टि बल से,
संतुष्ट नयन वे जीव फिर, नहीं देखते अन्य विकल से।
सौम्य-सुधा सम निर्मल मधुरतम, दुग्ध पिया क्षीर सागर का,
कभी भुलकर भी पियेगा, नहीं किसी लवणाकर का।।11।।

जिन शांतरुचि परमाणु से, तव काया का निर्माण हुआ,
त्रैलोक्य ललाम अभिराम रूप को, देख भव्यों का कल्याण हुआ।
परमाणु इतने ही जगति में, रूप अन्य दिखता न कोई।
मन-मंदिर में भव्यों के विराजित, सौम्य-मूर्ति आठों याम सोई।। 12।।

ज्योतिर्धर मुखचंद्र आपका, सुर असुर नेत्रों को हरे,
उपमाएं त्रिजगती की सारी, एक मात्र तुम्हीं को वरे।
कलंक युक्त है चंद्रबिंब भी, एक मात्र राशि में विचरे,
दिन में पलाश-पत्र सा फीका, चंद्र उपमा भी नाहि धरे।। 13।।

पूर्णिमा का चंद्र सुनिर्मल, संपूर्ण कलाएं खिल रही,
सुभ गुण-मणि आपकी भी, त्रिभुवन उलंघी झिल रही।
अनंत गुण जो एक मात्र ही, अर्पित सारे जगदीश्वर के,
कौन रोक सकता है उनको, विचरण करते स्वेच्छा बल से।। 14।।

हाव–भाव करि, देवांगनाएं, नृत्य गायन करे अंगस्पर्शी,
देह नग्न है ध्यान–मग्न प्रभु, की निर्विकार मन स्थिर बसी।
प्रलय–काल के पवन निमित्ते, पर्वतादि भी विचलित होवे,
अचलित है शिखर सुमेरू, फिर मन सुमेरू क्यों न होवे ?।।15।।

धुम्रबाती से रहित सदा जो, तेल का भी कुछ काम नहीं,
तीन जगत में सहज उदित है, अद्वितीय दीपक आप तुम्हीं।
अचलित को चलित करे जो, पवन बुझा सकता न कभी,
तीन जगत में अपर दीप हो, अलौकिक आलोक फैलाओ तभी।। 16।।

अस्त न होते कभी कदाचित, राहू भी ग्रसता ना कभी,
सहज स्पष्ट स्वाभाविक रीति से, प्रकाशित होते क्षेत्र सभी।
बादलों से आच्छादित होवे ना, महाप्रभावी विलक्षण जो,
सैकड़ों सूर्यों से भी महिमाशाली, तीन लोक में मुनिन्द्र वो।। 17।।

नित्य उदित जो रहे सर्वदा, मोह महातम ध्वंस करे,
राहू कभी न बाध्य करे, न बादल मिल उद्योत हरे।
चन्द्र कान्ति सम निर्मल तेरा, मुख मलिन न होय कभी,
हे प्रभो! आप त्रिजगत प्रकाशित, दिव्य चंद्रमा आप तभी।। 18।।

दिवस रात में जो फेरी लगाते, उन सूर्य चन्द्र की क्या जरूरत,
जब कि हे नाथ! तब मुखचन्द्र ही, दूर करता अंधकार समस्त।
धान्यशालि जब पक चुके खेत में, अम्बोनिधि को निहारे कौन,
अप्रमत्त ज्ञानी भक्त सदा, अन्तर्ज्ञान में ही रहते हैं मौन।।१९।।

सर्व ओर से अवकाश पाया, जो ज्ञान आप में आलोकित है,
मिथ्यादृष्टि अन्य देवों में, वैसा कहाँ प्रकाशित है।
ज्योतिर्मय दिव्य प्रकाश युक्त, अनमोल मणियों का जो आदर है,
यत्र-तत्र बिखरे कांच टुकड़ों का, क्या वैसा ही समादर है।। 20।।

हरिहरादिक देवों को देखा, यह आत्महित में अच्छा ही हुआ, हे नाथ!
चंचलता रही न किंचित् क्योंकि मन पूर्ण संतुष्ट हुआ।
भवान्तर में भी उनके दर्शन, मन को कभी न लुभायेंगे,
एक बार जो दर्शन कर ले, वे आपके ही बन जायेंगे।। 21।।

सैकड़ों स्त्रियाँ इसी जगत में, जन्म देती हैं पुत्रों को,
किन्तु आप सदृश पुत्र की, जन्म दात्री मरुदेवी माता वो।
दशों दिशाएं धारण करती, सहस्र रश्मियां प्रमुदित होकर,
पूर्व दिशा ही जन्मदात्री है, अंशुमाली की पावन हितकर।। 22।।

हे मुनिन्द्र! ऋषि मुनि आपको, योगेश्वर परम पुरुष माने,
अंधकार नाशक रहित वे, आदित्य समान भी तुम्हें जाने।
मृत्यु-भय को जीता आपने, सम्यक् उपलब्ध हुआ आतम,
शिवपद दाता शिवमार्ग विधाता जिससे बनते हैं परमातम।। 23।।

हे प्रभो! अव्यय अचिन्त्य हो, असंख्य आद्य भी आप ही हो,
ब्रह्मा ईश्वर गुणयुक्त अनंत हो, अनंग विजित भी आप ही हो।
योगेश्वर और विदित योग से, एक अनेक स्वरूप आप ही हो,
संत पुरुषों की वाणी में, निर्मल ज्ञान अरूपी आप ही हो।।24।।

[illegible] से [illegible] सिंहासन [illegible] आप ही हो

त्रिभुवन कल्याण कर्त्ता प्रभो! साक्षात् शंकर आप ही हो।
मोक्ष मार्ग के विधि विधेता, धीरज विधाता आप ही हो,
पौरूष को उजागर करते, अहो पुरुषोत्तम भी आप ही हो।।25।।

त्रिभुवन के दुःख हर्त्ता भगवन्! नमस्कार हो मेरा तुम्हें,
संसार तल के मात्र भूषण, नमस्कार हो मेरा तुम्हें।
तीनों जगत के परम ईश्वर, नमस्कार हो मेरा तुम्हें,
भव जलधि के शोषण कर्त्ता, नमस्कार हो मेरा तुम्हें।।26।।

सर्व गुणों ने आप में, किया निवास यह आश्चर्य महा,
हे मुनिश! वे अन्यत्र कहीं ना, जाते हैं अब छोड़ अहा।
दोषों को आश्रय अनेक मिले हैं, वे फूले नहीं समाते हैं।
इसीलिये तो स्वप्न में भी, तुम्हें देख नहीं पाते हैं।।27।।

नभ में उन्नत स्थिर रहे जो, तरू अशोक शोभित होता,
निर्मल आभायुक्त विराजित, तन अधिक प्रभासित होता।
बादलों के समीप रहा ज्यौं, सूर्य गगन में शोभा पावे,
सहस्त्र रश्मियाँ फैल रही हो, अज्ञान अंधेरा ध्वस्त होवे।। 28।।

विचित्र किरणों से दीपित हो, मणिरत्न जटित वह सिंहासन,
अहो! विराजित सुन्दर लगती, कंचनवर्णी काया भगवन।
उदयाचल पर्वत के शिखर पर, सूर्य ज्यों शोभित होता है,
दैदीप्यमान देह परमात्मा का, मन को मोहित करता है।। २९।।

कुन्द पुष्प के सदृश शुभ्र जब श्वेत चमर ढुलाये जाते हैं

भव्यजनों के मन–मयूर तब, श्री चरणों में पुलकित होते हैं।
स्वर्णगिरी के उभय पार्श्व में, ज्यों निर्मल झरने झरते हैं,
चंद्रकांति सम मन को मोहते, जब वे चामर ढुलते हैं।। 30।।

प्रभो! आपके मस्तक ऊपर, तीन छत्र की शोभा न्यारी,
चंदा जैसी मनहर कांति, तेज सूर्य से भी अतिशय भारी।
पंचवर्णी रत्न मणियों की, झालर शोभा पाती है,
त्रैलोक्यनाथ की तीनों लोकों में, अतिशय महिमा गाती है।।31।।

गंभीर नादमय देवदुंदुभि, जब आकाश में बजती हैं,
दसों दिशा में सद्धर्म प्रकाशक, प्रभु की जयकार गुंजाती है।
तीन लोक के भव्य जीवनों को, बुला रही हो तेरे पास,
अथवा यश प्रसारित करती, सबके मन में भरती विश्वास।। 32।।

कल्प–वृक्ष के दिव्य पुष्पों की, गंधोदक वर्षा मनहारि,
मन्दार सुन्दर और नमेरू, पारिजात बरसते सुपारि।
पंचवर्णी उर्ध्वमुखी हो, वायु से मन्द सुवासित है
मानो, दिव्य वचन ही प्रभु के, पुष्प रूप में प्रसारित है।। 33।।

स्फटिक सिंहासन पर विराजित, भामण्डल का दिव्य प्रकाश,
दिव्य तेज के सम्मुख उसके, द्युतिमान का भी होता है ह्रास।
संख्यात सूर्यों का तेज चमकता, फिर भी आतप नहीं करता है,
शशिमय सौम्य सदा निराला, भव भव का ताप भी हरता है।। 34।।

स्वर्ग और मोक्षमार्ग को, प्रकाशित करने में निपुण अति,
तीन लोक के सद्धर्म तन्त्रों का, कथन करने में महामति।
विशद अर्थ और भाव सरल हो, वाणी रूपी दिव्य ध्वनि गूंजे,
विभिन्न भाषा गुण सुशोभित, मन भावन भवि मन रुचे।। 35।।

सदा खिले सुवर्ण कमल की, कांति-सा झिलमिल प्यारा,
पंक्तिबद्ध नख शिखाभिराम है, विचित्र पद्म-सा उन्नत सारा।
नाथ! आपके चरण-कमल, जहाँ उदयाधीन हो बढ़ते हैं,
वहाँ देवगण आकर सुंदर पद्मपत्रों की रचना करते हैं।। 36।।

अष्ट महाप्रातिहार्य विभूति, अलौकिक है अनुपम सारी,
धर्मोपदेश के समय अन्य, देवों में वैसी नहीं दिखनहारी।
अखिल विश्व के अंधकार को, नष्ट करे ज्यौं सूर्यप्रभा,
असंख्य तारागण मिलकर भी, नहीं कर सकते वैसी विभा।। 37।।

मदोन्मत्त जब हो जाए हाथी, गण्डस्थल से मद मलिन झरे,
उन्मत्त हो क्रोध भी बढ़ता जाये, जब भ्रमर समूह गुंजार करे।
लाल अंगारे-सी आँखे हैं, आक्रमण करने जो आयेगा,
अभयदर्शी भक्त आपका, कभी नहीं घबरायेगा।। 38।।

विशाल हाथियों के कुंभस्थल का, जिसने किया हो विदारण,
रक्तरंजित मुक्ता ढेर लगाया, जिसका कोई न कर सके निवारण।
तेरे चरण-युग का आश्रय, लीना जिस भक्त ने मन-भावन,
वह उत्तेजित सिंह शांत हो, रज लगाए तव चरणों की पावन।। ३९।।

प्रलयकाल पवन से प्रेरित, अग्नि प्रचण्ड हो जल रही,
दावानल भी भभक रहा हो, चिनगारियां ऊंची उछल रही।
समूचे विश्व को मानो निगलने, आतुर हो अभिमुख आती,
तव कीर्तन की जलधारा ही, चंदन सम शीतलता बरसाती ।।४०।।

लाल नेत्र और कंठ भी नीला, गहरा काला डरावना है,
क्रोधोन्मत्त हो फुंकार रहा, विषधर महाभयावना है।
नाम स्मरण रूपी नागदमनी, जिसके अन्तर्हृदय में है,
भक्त का नहीं बिगाड़ सकेगा, चाहे नाग कितना ही निर्दय है।। ४१।।

हाथियों की गर्जना और हिनहिनाते घोड़ें की,
भूपति सिंह नाद करते, हो परीक्षा निज शक्ति की।
दिवाकर की शिखाओं से, ज्यों क्षण में अंधेरा नष्ट हो,
प्रभु नाम कीर्तन से विरोधी सैन्यबल भी ध्वस्त हो।। ४२।।

जिस युद्ध में बरछी भाले, हाथियों के मस्तक करें विदीर्ण,
बहती रक्त की नदियाँ है, सैनिक कटते ज्यों वस्त्र जीर्ण।
होगी जय पराजय किसकी, पता लगाना मुश्किल है,
चरण–कमलों के आश्रित हो, भक्त सदा ही अविचल है।। ४३।।

प्रचण्ड पवन से क्षुब्ध सरोवर, मगर मलयादि ऊंचे उछल रहे,
वाडवाग्नि अलग से धधक रही है, समुद्री जल जन्तु भी मचल रहे।
तूफानी जल तरंगों में, जहाज जिसका फंस गया हो,
श्रद्धा सहित स्मरण मात्र से, उसने तट को पा लिया अहो।। ४४।।

महारोग जलोदर भीषण, कुबड़ी हो गई कंचन–सी काया,
शोचनीय दशा में पड़ा, मृत्युमुख, लूट गई सारी माया।
प्रभु चरण–रज की औषध अमृत, जो नर इसका सेवन करता,
वह मानव स्वास्थ्य लाभ पाकर, मकरध्वज–सा रूप निरखता।।४५।।

पांवों से कंठ तक है जकड़ा, सांकलों से जो बंधा,
गाढ़ बंधन बेड़ियों से, छिल गये उसके जंघा।
किन्तु नाम मंत्र का स्मरण, जो करे श्रद्धा भक्ति से,
बंधन–मुक्त हो जाए शीघ्र ही, मुक्ति सुख पाए प्रभो शक्ति से।। ४६।।

मदोन्मत हाथी और सिंह भी, दावानल का भय अतिभारी,
दुर्जय संग्राम समुद्र जलोदर, बंधन की व्यथाएं सारी।
जो जन धीरज अरू श्रद्धा से, प्रभो! आपकी स्तुति गाते,
भयप्रद भयानक स्थानों से भी, शीघ्र ही वे मुक्ति पाते।। ४७।।

हे जिनेन्द्र! तब गुण सुमनों की, स्तोत्र माला रची सद्भावों से,
भक्ति पूरित विविध वर्णों की, धारण करे जो सुभावों से।
आचार्य मानतुंग की मनभावन, कंठाग्र करके जो गायेगा,
उस भक्त के वश में लक्ष्मी होगी, वह परम शांति को पायेगा।।४८।।

– श्री आनन्दीलालजी मेहता कृत

卐

श्री ऋषभदेव स्तुति

ऋषभदेव स्वामी तुम हो अन्तर्यामी,
वनिता नगरी के तुम हो राया राया राया ।। टेर ।।

माता तुम्हारी मोरा देवी,
नाभिजी के नन्दन तुम जाया जाया जाया ।। 1 ।।

साँझ सवेरे दुन्दुभी बाजे,
इन्द्र मिली ने यश गाया गाया गाया ।। 2 ।।

उठ सवेरे करूँ नित वन्दना,
करजोड़ी ने लागूँ पाया पाया पाया ।। 3 ।।

तन मन लाऊँ शीश निवाऊँ
दुखड़े निवारी सुख पाया पाया पाया ।। 4 ।।

दान शीयल–तप भावना भावो,
कर्म खपाए मुक्ति पाया पाया पाया ।। 5 ।।

卐

ले लो राजा ले लो

(तर्ज–लल्ला लल्ला लोरी....)

ले लो राजा ले लो ऋषभ राजा ले लो,
हम रे सौनेया, पड़कर तुमरे पैयाँ।। टेर।।

कोई कहता कन्या ले लो, कोई राजकुमारी।
प्रभु चरणों में अर्पित करता कोई सम्पत्ति सारी।
नग्न प्रभु को देख कहे वस्त्र ले लो।। 1।।

मौन प्रयाण प्रभु का लखकर ऋजु जनता यूँ बोली।
नहीं रूठते थे भगवन् तुम, करते नहीं ठिठोली।
आज क्यों हमसे रूठ चले हो।। 2।।

बीत चले यूँ बारह मास, न समझी जनता भोली।
आकर जाते क्यूँ भगवान्, यूँ लेकर खाली झोली।
हमसे प्रभु ये खेल न खेलो।। 3।।

कृत कर्मों का नाश हुआ तो, कैसा योग मिला है।
इक्षुरस से सिंचित प्रभु का, देह तरु जो खिला है।
कुँवर श्रेयांस के भाग्य फले हो।। 4।।

मंगलमय यह दिवस आज का याद दिलाने आया।
अक्षय–तृतीया के शुभ दिन ही, प्रभु ने पारणा पाया।
''विजय'' प्रभु के पद में मस्तक दे लो।। 5।।

卐

अक्षय तीज आई रे

(तर्ज–छुप गया कोई रे...)

अक्षय–तीज आई रे, समय है सुहाना
प्रभु आदिनाथजीद्व का हुआ आज पारना।। टेर।।

दीक्षा ली थी जब प्रभु ने लोग अज्ञानी।
नहीं जानते थे बहराना अन्न–पानी।
कोई कहता कन्या ले लो, कोई दे खजाना...प्रभु...।।1।।

पूर्वभव में प्रभुजी ने काम बैलों से लिया।
बारह घड़ी तक उनको अन्न–पानी ना दिया।
वही कर्म बाधक बनकर उदय हुआ आवना...प्रभु...।।2।।

शिक्षा देती ये घटना, नहीं अन्तराय दो।
बाँधे जो कर्म हँस के, भोगने पड़ेंगे रो–रो।
प्रभु शक्तिपुंज थे वे, मन म्लान किया ना...प्रभु...।।3।।

क्षय हुआ जब अन्तराय, पहुँचे श्रेयांस घर।
इक्षुरस उसने बहराया, पूर्ण भक्ति धर।
'अहोदानं' अहोदानं की हुई गगन घोषणा...प्रभु...।।4।।

तपवीर जो होते हैं, प्रभु पथ पर चलते।
तप की अग्नि में उनके सारे कर्म जलते।

मिलती उन्हीं को मुक्ति, सुख मन भावना...प्रभु...।।5।।
तप है समुज्जवल ज्योति जीवन जगाओ सब।
तप के मोती–हीरों से जीवन सजाओ सब।
तप की है महिमा भारी, पूर्ण कही जाए ना..प्रभु।।6।।

धन्य तप धन्य तपस्वी ऋषि मुनि गण है।
तप साधनामय जिनके जीवन के क्षण है।
शत–शत वन्दन हो उनको ''मंजुल'' भावना प्रभु...।।7।।

आदेश्वर बाबा

(तर्ज–प्रभाती...)

देखो रे आदेश्वर बाबा, कैसा ध्यान लगाया है।

कैसा ध्यान जगाया रे बाबा, कैसा मन समझाया है।।

नाभिराय के पुत्र कहीजे, मां मरुदेवी जाया है।
कर उपर कर अधिक विराजे, आसन घिर ठहराया है।। 1।।

केवल ज्ञान उपाय जिनेश्वर, शिव रमणी को ध्याया है,
सुर नर जिसकी मस्ति करता है। जिनवर सूं लिव लाया है।। 2।।

सेवा किया मिले सुख संपत सब जीवन सुख पाया है,
देवी देव मिले बहुतेरे भविजन मंगल गाया है।
तीन लोक में महिमा प्रभु की, चन्द्रकुशल गुण गाया है।। 3।।

अक्षय -तृतीया का त्यौहार

(तर्ज–झिलमिल सितारों का आंगन...)

अक्षय तृतीया का त्यौहार आया,
बहनों की तपस्या का तेज सवाया।
वर्षीतप पारणे का उत्तम अवसर आया,
बहनों की तपस्या का तेज सवाया।। टेर।।

दीक्षा दिन से वर्षाधिक तक, अन्तराय का उदय रहा।,
आदिनाथ थे दीर्घ तपस्वी, समता रस का स्त्रोत बहा।
पौत्र श्रेयांस ने यह रस बहराया, बहनों की तपस्या...।।1।।

नश्वर है यह काया माया दुनियाँ सारी फानी है।
एक धर्म सौख्य प्रदाता, वीतराग की वाणी है।
तपस्या का हीरा हाथों में आया, बहनों की तपस्या...।।2।।

त्याग तपस्या के पथ पर जो आगे बढ़ता जाएगा।
अष्ट कर्म को शीघ्र खपाकर मुक्ति का सुख पायेगा।
तप से दमकती माटी की माया, बहनों की तपस्या...।।3।।

भाई बहनों सुनो सभी अब, जीवन सफल बनाना है।
यथा शक्ति तप अपनाकरके, 'ललित' लक्ष्य को पाना है।
त्यौहार प्यारा संदेशा ये लाया, बहनों की तपस्या का...।।4।।

बोल-बोल आदेश्वर

(तर्ज–म्हासूँ मूँडे बोल...)

बोल–बोल आदेश्वर व्हाला, कांई थारी मरजी रे म्हासूँ मुँडे बोल

माँ मरूदेवी बाट जोवती, इतरे वधारे आई रे।
आज ऋषभजी उतर्या बाग में सुन हरषाई रे।।

न्हाय–धोय ने गज असवारी, करी मरूदेवी माता रे।
जाय बाग में नन्दन निरख्यो, पाई साता रे।।

राज छोड़ने निकल्यो ऋषभो, आ लीला अद्भूती रे।
चमर छत्र ने और सिंहासन मोहनी मूरती रे।।

दिन भर बैठी वाट जोवती, कद म्हारो रिखबो आवे रे।
कहती भरत ने आदिनाथ री, खबरा लावे रे।।

किस्या देश में गयो बालेसर, तुम बिन वनिता सुनी रे।
बात कहो दिल खोल लाल जी, क्यों बणग्या मुनि रे।।,

रह्या मजा में है सुखसाता, खूब किया दिल चाया रे।
अब तो बोल आदेश्वर म्हासुँ, कलपे काया रे।

खेर हुई सो हो गई व्हाला, बात भली नहीं कीनी रे।
गयां पछे कागद नहीं दिनों, खबरान लीनी रे।।

ओलम्भा मैं देऊं कठालग , पाछों क्यूँ नहीं बोले रे।
दु:ख जननी रो देख आदेश्वर हिवड़ो तोले रे।।
अनित्य भावना भाई माता, निज आतम ने तारी रे।
केवल पामी मोक्ष सिधाया, वंदना म्हारी रे।

मुगति रा दरवाजा खोल्या, मोरादेवी माता रे।
काल असंख्य रह्या उघाड़ा, जंबु जड़ गया ताला रे।।

साल बहोत्तर तीरथ 'ओसिया' घेवर प्रभु गुण गाया रे।
सुरत मोहनी प्रथम जिनंद की, प्रणमुँ पाया रे।।

卐

ऋषभदेवं प्रभु

(तर्ज–छुप गया कोई रे...)

ऋषभदेव प्रभु गोचरी जावे रे,
गोचरी जावे कोई नहीं आहार बंहरावे।। टेर।।

युगलियाँ युग जब विलय हुआ था।
धर्म कर्म युग का उदय हुआ था।
केवलज्ञानी बिना धर्म कौन समझावे रे।।1।।

हाथी सजाएँ, कई घोड़े सजाएँ।
थालियों में हीरे मोती भर–भर लाएँ।
प्रभु को बहराएँ प्रभु देख, फिर जावे रे।।2।।

कोई–कोई कन्या को भी सजाकर लाएँ।
सेवा करेगी कहकर भेंट चढ़ाए।
अविकारी प्रभु ऐसी भेंट न चाहे रे।।3।।

इनको क्या देवे सबको चिंता यही है।
राजा को रोटी की कमी कुछ नहीं है।
बहराने की विधि उन्हें कौन बतावेरे।।4।।

एक वर्ष तक प्रभु फिरे–द्वारे–द्वारे।
धीर वीर प्रसन्न वदन मौन व्रत धारे।
धन्य प्रभु तपधारी कर्म खपावे रे।।5।।

अन्तराय टूटी, मन सभी का ही हर्षा।
देवों ने की पुष्प रत्नों की वर्षा।
श्रेयांसकुमार इक्षुरस बहरावे रे।।6।।

आज वही अक्षय तृतीया है आई।
वर्षीतप वालों को देने बधाई।
'केवलमुनि' सभी हम गुण आज गावे रे।।7।।

सबसे बढ़कर नेम है।
नेम से भी बढ़कर प्रेम है,
जिस घर में न नेम न प्रेम है,
उस घर न कुशलक्षेम है।।

ऋषभ कन्हैया

(तर्ज–छोटा सा बलमा...)

ऋषभ कन्हैया लाला आंगना में रूम झुम खेले।
अँखियन का तारा प्यारा, आंगना में रूम झुम खेले।। टेर।।

इन्द्र इन्द्राणी आई प्रेमधर गोदी में लेवे।
हँसे रमावे करे प्यार, दिल की रलिया लेवे।।1।।

रत्न पालनिये माता, लाल ने झुलावे झूले।
करे लल्ला से अति प्यार, नहीं वो दूरीमेले।।2।।

स्नान कराई माता लाल ने पहिनावे झेले।
गले मोतियन का हार मुकुट सिर पर मेले।।3।।

गुरू प्रसादे 'मुनि चौथमल' यों सबसे बोले।
नमन करो हर बार, वो तीर्थङ्कर पहले।।4।।

卐

हर बात कबूल नहीं होती,
हर आरजू पूरी नहीं होती।
जिनके हृदय में आदिनाथ प्रभु हैं,
उनको धड़कन की भी जरूरत नहींहोती।।

आदेश्वर प्यारे

(तर्ज–यशोमति मैय्या से ...)

गलियों में घूम रहे आदेश्वर प्यारे।
जनता ने समझे ना मौन इशारे।। टेर।।

बारह मास भये प्रभु मौन व्रत पाले।
घर–घर जाये किन्तु भिक्षा वे ना ले।
कर्म खपाने प्रभुऽऽ...अभिग्रह धारे, प्रभु थे हमारे।। 1।।

रूठ गये क्यों सन्यासी लोग कहे सारे।
मोतियों के थाल भर–भर प्रभुजी पे वारे।
अकिंचन श्रमण वे तो ऽ ऽ ... सभी से हैं न्यारे।। 2।।

प्रभु श्रेयांसजी ने स्वप्न खूब पाया।
कल्पवृक्ष खुद ही चलके उस घर आया।
चिंतित देव देवीऽऽ दृश्य ये निहारे, प्रभु थे हमारे।। 3।।

घट–शत अष्ट लेके कृषि एक आया।
इक्षुरस से पूरण है ये भाव समझाया।
देख के कुँवर बोले, प्रभु ये स्वीकारे, प्रभु थे हमारे।। 4।।

प्रासुक रस से प्रभु ने पारणा किया है।
बूँद भी गिरे ना नीचे ध्यान ये दिया है।
'अहोदानं' 'अहोदानं' देवता पुकारे, प्रभु थे हमारे।। 5।।

दिन था तृतीया का और धार थी अक्षय।
आज तक मनाये हम भी उसी दिन की जय–जय।
'उज्जवल' प्रभु 'प्रीति' पार ही उतारे, प्रभु थे हमारे।। 6।।

घर पधारो स्वामी

(तर्ज–जरा सामने तो आओ...)

मेरे घर में पधारो स्वामी, मेरे भाग्य के खुल गये द्वार हैं।
पर क्या दूँ भला भगवान को, यों सोचे श्रेयांस कुमार है।।
वर्ष दिवस हो गये प्रभुजी, मौन व्रत से रहते हैं।
नहीं कहीं से कुछ लेते हैं, ना कुछ किसी को कहते हैं।।
क्या कारण है सोचे नरनार हैं,
क्या लिया अभिग्रह धार हैं...।। 1।।

जिस घर जाते वही प्रेम से भेंट चढ़ाने आता है।
वस्त्राभूषण रत्न–जवाहर, पद में धरने लाता है।।
पर प्रभु तो बने अनगार हैं
उन्हें चाहिये ना ये उपहार हैं...।। 2।।

कल्प–वृक्ष सम धर्मदेव की, सूख रही है क्यों काया?
तन टिकता है भोजन से ये जान ईक्षुरस बहराया।
कर–पात्र बना के लिया आहार है
किया देवों ने जय–जयकार हैं...।। 3।।

प्रथम जिनंद ने संयम लेकर प्रथम बार जब आहार लिया।
'अशोक मुनि' तब प्रथम दानी का देवों ने सत्कार किया।।
माने दानी का सभी आभार हैं
होता दानी से बड़ा उपकार है...।। 4।।

आदिनाथ प्रभु!

एक बार मुखड़ो बताओ दीनानाथजी
एक बार दर्शन दिरावो दीनानाथ जी
थारी मोहनी सूरत लागे प्यारी
आदेश्वर अरज सुनो।। टेर।।

सिद्धाचलना वासी थे तो विमला चलना वासी हो।
मरूदेवी रोऽऽ... लाड़लो नंद आदेश्वर...।।1।।

जुगलिया धर्म निवारण दादा भवतारक भगवान हो।
म्हारा व्हाला हो...सुनंदा ना कंत...।।2।।

बाहुबली तारया दादा भरतजी तारया हो।
म्हारी नाव लगा दो भव पार आदेश्वर...।। 3।।

दादा थाने मालूम होवे, थारे शरणे आव्या हो।
नहीं भुलूँगा होऽऽ... थारो उपकार...।। 4।।

कोयलड़ी बोले मीठा, मोरियांजी बोले हो।
थारो मंडल हो... करे पुकार...।। 5।।

एक गम काफी है, हजारों खुशियाँ भुलाने के लिए।
जीवन में एक वर्षीतप काफी है, भवोभव के कर्म मिटाने के लिए।।

भरत राजा

(तर्ज-पदम प्रभु पावन नाम....)

1. भरत राजा घर में ही वैरागी, वे तो अन्न जल के हैं त्यागी।। ध्रुव।।
क्रोड़ अठारा तुरंग घर जांके, क्रोड चौरासी पागी।
लक्ष चौरासी गज, रच, सोहे तो भी भये नहीं रागी।।
2. तीन क्रोड गोकुल घर 'जाके', एक क्रोड हल साजे।
चवदा रत्न नव निधि के स्वामी, मन तृष्णा सब भागी।।
3. चार क्रोड नाज मन उठ नित लण लाख दस लागे।
क्रोड़ थाल कंचन मणि सोहे, मन वांछा सब दागी।।
4. ज्यौं जल बीच कमल अंते उर, नाहीं भये वो तो रागी।
भविजन होवे सो ही उर धारे, धन धन हो बड़ भाजी।

- सभी तीर्थकरों का प्रथम पारणा खीर से
- ऋषभ प्रभु का प्रथम पारणा इक्षु रस से।
  भ. ऋषभदेव का देव-द्रव्य वस्त्र नहीं रहा।
- प्रथम पारणे के समय जघन्य साढ़े बारह लाख स्वर्णमोहरों की उत्कृष्ट साढ़े बारह करोड़ स्वर्ण मोहर वृष्टि होती है।
- तीर्थंकर प्रभु का पारणा कराने वाला भाग्य शाली उसी भव में या तीसरे-भव में मोक्ष प्राप्त करता है।
- तीर्थंकर प्रभु साधनाकाल में प्रायः मौन रहते हैं, तथा भूमि पर भी नहीं बैठते हैं।

आदिनाथ का कुल

आदिनाथ प्रभु के कुल का क्या कहना,
सिद्ध क्षेत्र पधारे सभी भाई बहना।

1. सुमंगला सुनंदा की फुलवारी थी, सौ पुत्र दो कन्या की केसर क्यारी थी आदिनाथ प्रभु को सबसे पहली वंदना.....

2. माता मरुदेवी की महिमा न्यारो थी, आदिनाथ को देख मिटो अंधियारी थी,मोक्ष द्वार खोला है... कर लो चरण वंदना.....

3. भाषा लिपि का ज्ञान प्रभु ने ब्राह्मी को दिया, अंक लिपि में सुंदरी को निष्णात किया, कृपा करके प्रभु ने दिया संयम गहना.....

4. आदिनाथ के शासन को दोनों प्रमुखा बानी, जग को छोड़ के राह मोक्ष की चुनी, अनुकरण पिता का हमें भी करना.....

5. सोलह सतियों में दोनों निराली रही, गुण गाथा न मुख से जाय कही आदिनाथ प्रभु को शत शत वंदना.....

6. मान हाथी पर बैठे थे बाहुबली पितृ आज्ञा से दोनों बहनें चली नीचे उतरो भैय्या, कर लो चरण वंदना.....

7. मधुर–मधुर शब्द कानों में पड़े, वंदन करने को ज्यौंहि चरण बढ़े केवल ज्ञान का हार गले में पहना।।

वर्षीतप अभिनंदन

(तर्ज – होठों से छूलो ....)

आओ हम आज करें, वर्षीतप का अभिनंदन।

तप ज्वाला में तपकर, काया बनती कुंदन।। ध्रुव।।

वर्षीतप करना तो, आसान नहीं कोई–२

तपधारा में बहता इंसान कोई –२

तन–मन की मजबूती से, सोभे तप का, आसन...।।

शिवपुर के पथ में तो, तप बहुत जरूरी है,

अध्यात्म–साधना भी, तप बिना अधूरी है,

वर्षीतप से कटते हैं, जन्मों के अघ बंधन....।।

दुस्तर महासागर की, तप से तिर सकते हैं,

हो दुष्कर कार्य भले, तप से कर सकते हैं,

प्रभु आदिनाथ के चरणों में, भक्ति भावों से वंदन...।।

卐

卐 श्री ऋषभ देव का पारणा 卐

(तर्ज–श्री बाहुबली की आरती...)

श्री ऋषभ देवका पारणा मनाओ मिलके
मनाओ मिलके सभी गुण गाओ मिलके।। टेर।।

नाभिराय पितु मरुदेवी माता
जन्म लिया जब हो गई साता–2
मोहनी मूरत पे तन–मन वारो मिलके....
श्री ऋषभ देव का पारणा............. ।। 1 ।।

पंच–शत धनुष की काया पाई
तेज प्रभु का सूरज नाई–2
त्रिलोकीनाथ को वंदन करलो सब मिलके..........
श्री ऋषभ देव का पारणा.............. ।।2 ।।

असि–मसि–कृषि की विद्या बताई
जीवन जीने की कला सिखाई–2
कर्मयोगी की माया निहारो मिलके.......
श्री ऋषभ देव का पारणा .... ।। 3 ।।

नाम प्रभु का पावनकारी
हर लेता है कर्म बिमारी–2
भक्ति भाव से पाप धोलो झुक–झुक के
श्री ऋषभ देव का पारणा........... ।। 4 ।।

घर–घर प्रभुवर गोचरी जाएँ

सूझता आहार ना कोई बहराएँ–2

मणिमाणक हाथी घोड़े समर्पित करते सब मिलके....

श्री ऋषभ देव का पारणा............ ।। 5 ।।

अंतराय कर्म का नाश हुआ है

कुंवर श्रेयांस का भाग्य जगा है–2

कलश एक सौ आठ इक्षुरस बहराया भावों से..........

श्री ऋषभ देव का पारणा .... ।। 6 ।।

सुपात्र दान का महापर्व आया

'प्रियदर्शन' मन हर्ष सवाया–2

अक्षय तृतीया की महिमा सभी जन गाओ मिलके.......

श्री ऋषभ देव का पारणा .... ।। 7 ।।

अक्षय-तृतीया का यह शुभ दिन आया,
कुंवर श्रेयांस ने प्रभु को पारणा कराया।
धन्य बनी हस्तिनापुर की पुण्य धरा,
देवों ने अहो दानं अहो दानं नाद गुंजाया।।

इक्षुरस पारणा

(तर्ज–देख तेरे संसार.......)

इक्षुरस से किया पारणा, आखा तीज महान,

जय–जय आदिनाथ भगवान

(1) ऐसा कर्म उदय में आया, बारह मास आहार न पाया।
सूखी कल्पवृक्ष–सी काया, फिर भी दिल से नहीं घबराया।
घर–घर नित जावे गोचरी, देवे सब सम्मान।।

(2) कोई हाथी घोड़ा लावे, रत्नथाल भी कोई बहरावे।
कोई कन्या भेंट चढ़ावे, प्रभु देख पाछा फिर जावे।
बारह घड़ी अन्तराय की कीनी, बारह मास भुगतान।।

(3) विचरत–विचरत महल में आया, भोजन दोष रहित न पाया।
प्रभु लौटकर बाहिर आया, श्रेयांस कहे है मुनिराया।
इक्षुरस निर्दोष है स्वामी, ले लो कृपानिधान।।

(4) आज प्रभु कर पात्र बढ़ाया, कुंवर सेलड़ी रस बहराया।
किया पारणा सब मन भाया, तीन लोक में आनन्द छायां।
घर–घर हर्ष सवाया गाया, सुर नर मंगल गान।।

卐

विश्वप्रेम मैत्री के साधक, आनंद गुरु तुम्हें प्रणाम।
मोक्षपंथ के विधि विधायक आनंदगुरु तुम्हें प्रणाम।।

ऋषभदेव की आरती

जै जै ऋषभप्रभु स्वामी, जै जै ऋषभ प्रभो,
निशदिन ध्यान धरूँ, दीजै दर्श विभो,
ओऽम जय जय ऋषभ प्रभो।। टेर ।।

शरणागत जो तेरी, आवे सुख पावे,
धन वैभव उसके घर, अनायास आवे...।।१।।

जितने देव सभी हैं, क्रमन के मारे,
तुम हो कर्म विजेता, भक्तन रखवारे...।।२।।

चार तीर्थ संस्थापक, आदि के कर्त्ता,
ब्रह्मज्ञान के धारक, जन्म–मरण हर्ता...।।३।।

जो कोई तुमको ध्यावे, वांछित फल पावे,
रोग शोक मिट जावे, कंचन तन पावे...।।४।।

'मोहन' महिमा गावे, पार नहीं पावे,
'सोहन' शरण तिहारी, सुख सम्पत्ति पावे...।।५।।

卐

ऋषभ

अक्षय तृतीया का गौरवशाली जैनों का है इतिहास
किया पारणा आदिनाथ ने, मन में छाया हर्षोल्लास ।।आ.।।

यौगलिक युग था जिसमें, सब निर्भय होकर रहते थे
नहीं किसी द्वन्द्व चिन्ता करते, कटुक वचन नहीं कहते थे
कल्पवृक्ष से वांछित पूरे करते सुख का था आवास।।1।।

पुण्योदय बिन कल्पवृक्ष भी, कब इच्छा पूरी करता
मनुज-मुज सब भूख मरते, कहते ऋषभ तुम्हीं कर्ता
दुविधाओं को दूर निवारो, पूरी करदो मन की आश।।2।।

असि-मसि-कृषि की कला सिखाकर, चले ऋषभ संयम पथ पर
काम-काज सब सौंप पुत्र को, बने जगत में ज्योतिधरे
मौनी बनकर रहे सत्य से, करते आत्मा का आभास।।3।।

बाबा ले लो माणक-मोती-हीरा-पन्ना रथ तैयार
बोलो क्या हम भेंट करें अब और नहीं है कुछ उपहार
बाबा तो कुछ नहीं बोलते, रोटी बिन करते उपवास।।4।।

साढ़े बारह महीनों तक नहीं, हुआ पारणा विभुवर का
फिर प्रपौत्र श्रेयांस हाथ से, हुआ पारणा प्रभुवर का
इक्षुरस बहराया जिसकी, आज आ रही मधुर सुवास।।5।।

सुन सुन रे म्हारा

(तर्ज–उड़–उड़ रे....)

सुन सुन रे म्हारा भरत लाडला

कद म्हारो दिखबो घर आसी कद 2

1. माँ मरुदेवी थारो ऋषभ लाड़लो

राज छोड़ गयो वनवासी कद म्हारो...

2. पाल्यो पोस्ओ लाड़ लड़ाओ हरख कोड मैं घणो मनायो

माँ–माँ कह अब कुण आसो...

3. त्याग तपस्या रो फल है मोहो, स्वारथ जग में घणो होज खोहो,

धर्म किया मुक्ति पासी, कद...

4. सुख और दुख ने एक ही जान्यो, माँ रो ममता ने पहचान्यो...

राज छोड़ गयो वनवासी, कद म्हारो....

卐

ऋषभ देव जन्मोत्सव

(तर्ज–आज रो बधावो.....)

आज रो बधावो, राजा नाभि रे दरबार रे।
मरूदेवी बेटो जायो, नाम ऋषभकुमार रे।। टेर।।

अयोध्या में मोच्छव होवे, मुख बोले जय जयकारे रे।
घनन घनन घन घंटा बाजे, देव करे जेईकारे रे।।1।।

इन्द्र इन्द्राणी मिल मंगल गावे, लावे मोतीमाल रे।
चंदन चरणे पाय लागे, प्रभु जीवों चिरकाल रे।।2।।

नाभिराजा दानज देवे बरसे अखण्डधार रे।
ग्राम नगरपुर पाटण देव, देवे मणि भंडार रे।।3।।

हाथी देवे साथी देवे, देवे रथ तुखार रे।
हीर चीर पीताम्बर देवे, देवे सभी शिणगार रे।।4।।

तीन लोक में दिनकर प्रगट्यो, घर–घर मंगलमाल रे।
'केवल' कमला रूप निरंजन आदिश्वर दयाल रे।।5।।

卐

वर्षीतप की महिमा

(तर्ज –धीरे–धीरे बोल...)

वर्षीतप करो भाई वर्षीतप करो, ऋषभ जपो बहनों ऋषभ जपो....।

ऋषभनाम से बेड़ा पार है, प्रभु की महिमा अपरंपार है ऋषभ जपो...।

1. वर्षीतप की महिमा ज्ञानी मुनियों ने गाई,

ऋषभ प्रभु ने इसको है अपनाई

कहते करम बढ़ता धरम मिलती शांति अपार है....।।

2. भौतिक सुख के लिए नहीं तप करें

धन दौलत के लिए नहीं तप करें,

शुद्धि के लिए, मुक्ति के लिए करना ही श्रेयकार है...।।

3. तपस्वी के आगे सुर नर सब ही नमते,

इस भव परभव के कर्म सभी है कटते,

श्रद्धाभाव से अहोभाव से, फिर मुक्ति तैय्यार है...।।

'प्रियदा' कहे बहनों वर्षीतप करो....।।

卐

।।श्री।। ।।ॐ आदिनाथाय नमः।। ।।आनंदतीर्थ।।

गुरु आनंद फौंडेशन

1008 सामुहिक वर्षीतप आराधना महा महोत्सव

वर्षीतप प्रारंभ दिनांक 24 मार्च 2014

महोदय,

ज्ञान के महोदधि, शान्ति और समाधि के शिरोमणि, रत्नमय के आराधक,जन–जन के आस्था के पूजक, भक्तों के मनमंदिर के देवता, चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप जिनका दीक्षा शताब्दि चल रहा है, ऐसे आचार्य भगवंत आनंदऋषिजी म.सा.। इस शताब्दि वर्ष क सहस्त्र पंखुडियों से, आत्मा के हर प्रदेश से, सुरभिमय बनाने के उत्साह में उत्साहित पूज्य प्रवर उपाध्याय रत्न प्रवीणऋषिजी म.सा. के मनमानस में एक सुंदर सी परिकल्पना जाग उठी कि, इस दीक्षा शताब्दि वर्ष में 1008 वर्षीतप झेलने हैं।

परिकल्पना बहुत सुंदर है क्योंकि तप से आत्मा का दिव्य प्रकाश प्रखरित होता है। **'तपसा निर्जरा'** के तप से ही कर्मों की निर्जरा होती है। तप से ही आत्मा का सौंदर्य खिल उठता है।

भौतिक जगत के चकाचौंध में, हम खान–पान में, साज–श्रृंगार में, राग–रंग में चटकीली–भटकीली जीवनशैली में भ्रमित हो गये हैं। अतः आओ–

इस मनमंदिर में ध्यान का दीप जलाओ।
मन को तृष्णा के भँवरजाल से छुड़ाओ।।
जीवन को वासना के तुफान से बचालो।
अध्यात्म की किरणों को विकसाओ।।
अहिंसा और सत्य का सूरज उगवाओ।
आत्मा के अनाहरक गुण को प्रकटाओ।।
तप तेज के पुंज से आत्मतेज विकसाओ।।

वर्षीतप आराधना विधि पावन प्रेरणा दाता उपाध्याय प्रवर पू. श्री. प्रवीणऋषिजी म.सा.

1. नवकार मंत्र 3 बार
2. इच्छाकारेणं संदिसह भगवं ओ आदिनाथ भगवन् आपकी कृपा से, आज्ञा से, मार्गदर्शन से आपकी भक्ति में वर्षीतप करने की भावना है।
3. आदिनाथ परमात्मा के प्रति मन–वचन–काया से समर्पित होकर उनके दिव्य शक्ति को ग्रहण करते हुए यथासमय रायसी–देवसी प्रतिक्रमण करना। कम से कम भाव प्रतिक्रमण।
4. प्रातः भक्तामर स्तोत्र का पाठ करना।
5. आदिनाथ भगवान को 27 णमोत्थुणं देना। णमोत्थुणं के अंत में "वंदामि णं भगवं तत्थ गए इहगयं पासइ मे भगवं तत्थ गए इहगयं" वह पाठ बोलना... णमोत्थुणं के प्रारंभ में" ॐ णमो भगवओ अरहओ सिरि उसभसामिने"
6. भगवन ढाई द्विप–15 क्षेत्र में जो जो भी साधक वर्षीतप की साधना–आराधना–भक्ति कर रहे हैं उन सबकें साथ मेरी साधना जुड़ जायें। आपकी कृपा से हम सबकी साधना सिद्ध हो सफल हो–मंगल हो।
7. हमारी तप साधना से घर–परिवार–समाज देश एवं लोक के विश्व के समस्त जीवों का कल्याण हो... इसी शुभ मंगल भावनाओं के साथ... यह मंगल भावना रोज भानी...

❖ पारणे के दिन–श्रेयांसकुमार को स्मरण करना। श्रेयांकुमार पारणा करा रहे हैं इस भावना से पारणा करना। जो भी ले रहे वह इक्षुरस सम है। इस भावना से ग्रहण करना। तप साधना में किसी भी तरह की असुविधा दिक्कत हो तो संपर्क करें। आपके तप का गुरू आनंद तीर्थ एवं गुरू आनंद फौंडेशन अभिनंदन एवं तप अनुमोदना करता है।

संपर्क – गुरु आनंद फौंडेशन

चिंचोड़ी, (शिराल), ता. पाथर्डी, जि. अहमदनगर (महाराष्ट्र) –414166

कार्यालय – 7 दुग्गल प्लाजा, प्रेम नगर, बिबगेवाड़ी रोड, पूणे–411037

टेलि नं. 020–24220681/82 फैक्स : 020–24218288 य

guruanandtirth@gmail.com

पुस्तक खोलो उत्तर लिखो, प्रभु आदिनाथ से वर्षीतप करना सीखो।

"नमो सुयदेवयाए भगवईए"

"भोजन करने से पहले इतना जरुर करो"

★ पक्षियों को दाना, धान देने से धंधा, व्यापार जोरदार चलता है, सर्वत्र प्रगति होती है।

★ कुत्ते को रोटी खिलाने से दुश्मन और विरोधी शांत होते हैं।

★ गायों को चारा, पानी देने से कष्टपीड़ा दूर होती है।

★ चींटियों को चीनी देने से कर्जा उतरता है सुगर ठीक होती है।

★ साधर्मिक भाई-बहनों की मदद करने से लक्ष्मी बढ़ती है।

★ साधु-साध्वियों को आहार पानी बहराने से अखूट पुण्यानुबंधी पुण्य का लाभ होता है।

उत्कृष्ट भाव रसायन में तीर्थकर गौत्र का भी लाभ मिलता है।

"देता भावे भावना, लेता करे संतोष।
वीर कहे सुन गोयमा, दोनों जासी मोक्ष।।"

★ श्रुत सेवा में तन-मन-धन से सहयोगी बनने से ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है। मूर्ख भी पंडित होकर सर्वत्र माननीय बन जाता है।

—: श्रुत सेवा लाभार्थी :—

★ सेवाभावी श्रीयुत् बस्तीमल जी एवन्ता कुमारजी, शीतल जी सुपार्श्व जी पुंगलिया मुद्गल (कर्नाटक) मो. 8277050371

★ तपस्वी रत्न श्रीमान भंवरलाल जी अशोक कुमार जी संचेती बैंगलोर (कर्नाटक)

★ सेवाभावी श्रीयुत् उगमचंद जी निर्मलकुमार जी, मनीष कुमारजी मेहता (छाजेड़) महावीर नगर, दुर्ग (छ.ग.)

प्रज्ञाविभूति महासती
श्री प्रियदर्शना श्री जी म.सा.

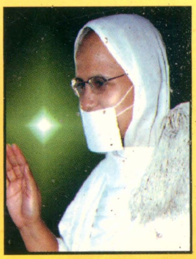

बाह्य व्यक्तित्व—तेजस्वी मुख-मण्डल, श्वेत परिधान, भव्य एवं आकर्षक व्यक्तित्व की धनी हैं—महासती प्रियदर्शना जी म.सा.

आन्तरिक व्यक्तित्व—संयममय जीवन, सरलता, विनम्रता, गुरू भक्ति एवं तीव्र मेधा से सम्पन्न.

आप 17 वर्ष की लघुवय में 'अक्षय तृतीया' के दिन सन् 1979 में आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. से दीक्षा ग्रहण करके पू. गुरूणी जी श्री कौशल्या देवी म.सा. एवं पू. श्री विजय श्री जी म.सा. के चरण-सन्निधि सर्वात्मना समर्पित होकर रत्नत्रय की आराधना में तल्लीन हो गईं.

अध्ययन के क्षेत्र में—श्वेताम्बर तथा दिगम्बर शास्त्रों का गहन अध्ययन करके आपने जैन सिद्धान्ताचार्य, साहित्य रत्न तथा जैन दर्शन में एम.ए. तक की परीक्षाएँ सर्वोच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं.

लेखन के क्षेत्र में—भजन, मुक्तक, कविताएं और गद्य रचनाएं करके आपने भारतीय साहित्य के भण्डार में अभिवृद्धि की है.

विहार क्षेत्र—राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात, हरियाणा, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़ आदि.

विशेषता—सहज जीवन, समन्वयात्मक दृष्टिकोण, गुणग्राही वृत्ति, विनम्रता, कोमलता और श्रद्धा भक्ति.

प्रस्तुत कृति में वर्षीतप के आराधकों के लिए जप-तप विधि एवं भजनों का सुन्दर संकलन हुआ है.

ऋषभ -चरित्र एवं तप विधि को पढ़कर वर्षीतप करावें।

साध्वी विचक्षणा श्री 'प्रज्ञा'

साध्वी सुकृति श्री जी

साध्वी सुप्रज्ञप्ति श्री जी